भारत के संदर्भ में ग्लोबल वार्मिंग

एक परिचयात्मक अवलोकन

1. आमुख

यह पुस्तिका प्रमुख रूप से विभिन्न प्रान्तों के अनेक लोगों से की गई बातचीत, साथी कार्यकर्ताओं से चर्चा, जनता के साथ बैठकों एवं चर्चाओं, कार्यात्मक प्रतिवेदन, राष्ट्रों द्वारा तैयार किए गए कार्य योजनाओं, शासकीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं एवं सरकारों के प्रकाशनों, प्रकाशित पुस्तकें एवं विज्ञान के प्रपत्रों पर आधारित है। इसके अलावा कई अन्य राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय दस्तावेजों का अध्ययन कर उसमें से भी सामग्रि इसमें शामिल किया गया है। मूल लेख में इन संदर्भो का उल्लेख नही किया गया है ताकि यह अत्यधिक जटिल न हो। इस लेख को पढ़ने के बाद जिन पाठकों को इस विषय पर और अधिक अध्ययन करने की इच्छा है उनके लिए अंत में एक संदर्भ सूची दी गई है। आलेख में व्यवहृत कठिन शब्दों के अर्थ देते हुए अंत में एक शब्दावलि भी दी गई है । मुख्य रूप से यह पुस्तिका महाविद्यालयीन छात्र-छात्राओं एवं अन्य युवाओं व कार्यकर्ताओं को ध्यान में रखकर लिखी गई है।

- नागराज आडवे

2. उन्होंने हमें गुजरात में जो कहा

कुछ वर्ष पहले हमारा एक समूह गुजरात के कुछ हिस्सों में यह जानने के लिये गया था कि जलवायु परिवर्तन से वहां छोटे किसानों पर क्या प्रभाव पड़ रहा है। पूर्वी गुजरात के गावों में उन्होंने हमें बताया कि सर्दियों की मक्का की फसल प्रभावित हो रही है। क्योंकि सर्दियां जरा गर्म हुई हैं, पिछले पांच वर्षों में ओस गिरना अत्यधिक कम या पूरा बन्द हो गया है। अधिकतर गरीब निवासी जिनके पास अपने कुंए नहीं हैं, उनकी फसलों के लिये नमी का एक मात्र स्रोत ओस ही है। ओस के कम गिरने या नहीं गिरने से उनकी फसल या तो सूख गई या मजबूरन उन्हें उनके खेत खाली छोड़ने पड़े। इस क्षेत्र में एवं इसके आसपास मक्का, गरीब निवासियों के

लिये पोषण का एक बहुत ही महत्वपूर्ण स्रोत है। उत्तरी गुजरात के अन्य गांवों में हमें अन्य प्रभावों के बारे में बताया गयाः आजकल बरसात उस समय नहीं होती है जिस समय होनी चाहिये या जब बरसात होती है उस समय नहीं होनी चाहिये, अधिकतर बरसात थोड़े समय में होती है, लोगों को नई बीमारियों का सामना करना पड़ रहा है, पशु और ज्यादा बीमार रहने लगे हैं, कीटाणुओ का प्रकोप बढ़ गया है, आदि।

इन सबके बारे में लोगों से बहुत ही रोचक जवाब प्राप्त हुए। जब हम उनसे पूछते कि इस होने वाले बदलाव के बारे में उनके क्या विचार है, तो वे कहते कि ये तो अपने आप हो रहे प्राकृतिक बदलाव है। यह बहुत चौंकाने वाली बात है कि उन लोगों ने इसे कल्पना योग्य बात भी नहीं समझी कि मनुष्य में इस व्यापक स्तर पर प्रकृति में बदलाव करने की शक्ति है।

दुर्भाग्य से यह सच है कि मनुष्य अपनी गतिविधियों से वातावरण में व्यापक बदलाव ला सकते है। जब भी हम कोयला और खनिज तेल को जलाते है, जो कि अभी और पिछले २५० वर्षो से आधुनिक समाज के चालक हैं, तब उसमें मौजूद कार्बन बातावरण में उपस्थित आक्सीजन से मिलकर कार्बन डायआक्साइड गैस का निर्माण करते हैं। आक्सीजन गैस की तरह यह भी अदृश्य होती है और इसकी गंध भी नहीं होती है। ऑक्सीजन के विपरीत इसमें सूर्य के कुछ विकिरण को रोककर सोख लेने की क्षमता होती है जो कि पृथ्वी की सतह से टकराने के बाद लौटकर वापस जा रही होती है। कुछ अन्य गैस भी ऐसा ही करती हैं जैसे मीथेन (प्राकृतिक गैस के जलने से उत्पन्न) एवं नाइट्रस ऑक्साइड (रासायनिक खाद के उपयोग से उत्पन्न) लेकिन कार्बन डायऑक्साइड सबसे अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि यह वातावरण में हजारों सालों तक बनी रहती है। इसी कारण से समझने की सहजता के लिये इस पुस्तिका का विषय मुख्य रूप से कार्बन डायऑक्साइड पर केन्द्रित है। इन गैसों की सौर विकिरण को रोककर वातावरण को गरम करने की इस क्षमता को अंग्रेजी में ग्रीन हाउस प्रभाव एवं इन गैसों को ग्रीन हाउस गैस कहा जाता है। यह इसलिए कि वातावरण का गर्म होने की इस प्रक्रिया लगभग उसी तरह है जो सर्द आबोहवा वाले

देशों में पौधों को कृत्रिम रूप से गरमी प्रदान करने के लिए निर्मित कुछ विशेष कांच के कमरे में होती है जिन्हें ग्रीन हाउस कहा जाता है।

3. धरती की रजाई (का आवरण) हमें और गर्म कर रही है

कार्बन डायऑक्साइड अपने आप में खलनायक नहीं है; बल्कि धरती पर जीवन के लिये यह आवश्यक तत्व है। कार्बन डायऑक्साइड के बिना पृथवी 30 डिग्री सेल्सियस अधिक ठण्डी होती, और इस स्थिति में रहने के लायक नहीं होती एवं निश्चित रूप से मनुष्यों के लिये तो नहीं। प्राकृतिक वातावरण में कार्बन डायऑक्साइड की उपस्थिति से ही उपयुक्त तापमान बना रहा है जिससे खेती की फसलों को उगाने एवं मानव सभ्यताओं के विकास में सहायता मिली है।

लेकिन अब हम वातावरण मे प्राकृतिक रूप से उपस्थित कार्बन डायऑक्साइड की मात्रा में कुछ और भी जोड़ रहें हैं। हम धरती के नीचे से खोदकर कोयला, खनिज तेल एवं प्राकृतिक गैस को कारखाने चलाने के लिये, कार चलाने के लिये, बिजली के उत्पादन के लिये, हवाई जहाज उड़ाने के लिये, सीमेंट बनाने के लिये, माल परिवहन के लिये एवं युद्ध लड़ने के लिये जलाते हैं। इनमें से कुछ गतिविधियां आवश्यक हैं, कुछ सामाजिक अपव्यय हैं, और कुछ तो बिल्कुल ही अनावश्यक, यहां तक कि नुकसानदेह हैं। ऐसी गतिविधियों के द्वारा पूरी दुनिया में धरती को खोदकर निकाले गये ईधन को जलाकर 3400 करोड़ टन (1 टन = 1000 किलोग्राम) एवं सीमेंट के उत्पादन से 200 करोड़ टन कार्बन डायऍक्साइड 2013 में वातावरण में छोड़ी गई है जो कि वर्तमान में उपलब्ध नवीनतम विश्वव्यापी आंकड़ें हैं। साथ ही 400 करोड़ टन कार्बन डायऑक्साइड की बढ़ोतरी हमारे जंगलों की कटाई से हुई है; जब भी लकड़ी जलती है अथवा सड़ती है, उससे कार्बन डायऑक्साइड निकलती है। अन्य ग्रीन हाउस गैसों के योगदान की गणना उनकी वातावरण को गरम करने की क्षमता की तुलना कार्बन डायऑक्साइड से की जाती है एवं यह योगदान को कार्बन डायऑक्साइड के मात्रा में व्यक्त किया जाता है। इसमें मीथेन का योगदान ६०० करोड़ टन कार्बन डायऑक्साइड के समान एवं नाइट्रस ऑक्साइड एवं अन्य

गैसों का योगदान 400 करोड़ टन कार्बन डायऑक्साइड के समान है। दूसरे शब्दों में, केवल भूगर्भ से निकाले गये ईंधन को जलाने से उत्पन्न कार्बन डायऑक्साइड की मात्रा 3400 करोड़ टन है जबकि सभी मानव गतिविधयों से उत्पन्न कार्बन डायऑक्साइड की मात्रा 4000 करोड़ टन एवं अन्य गैसों के योगदान 1300 करोड़ टन कार्बन डायऑक्साइड के बराबर है। इस प्रकार केवल एक वर्ष 2013 में कुल 5300 करोड़ टन कार्बन डायऑक्साइड के बराबर ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जित हुआ है।

कालांतर में समय के साथ एक चौथाई से कुछ अधिक कार्बन डायऑक्साइड समुद्र के द्वारा सोख ली जाती है जिससे उसका पानी और अधिक अम्लीय हो रहा है। जमीन पर लगभग उतनी ही मात्रा पेड़ों, घास एवं मिटटी द्वारा ग्रहण कर ली जाती है। आधे से कुछ कम वातावरण में बनी रहती है।

पूरे वातावरण में सभी गैसों को मिलाकर जो कुल गैसीय मात्रा है, उसके लगभग हर 800 करोड़ टन का अनुपात उसका एक भाग प्रति दस लाख है जिसे अंग्रेजी मे एक पार्ट पर मिलियन (पी. पी. एम.) कहा जाता है। सन 2015 में वातावरण में कार्बन डायऑक्साइड की मात्रा 400 पीपीएम के पार हो गया एवं ऐसा मानव इतिहास में ही पहली बार नही बल्कि पिछले 40 लाख वर्षों में पहली बार हुआ है। औद्योगिक क्रान्ति की शुरुआत में यह लगभग 280 पीपीएम हुआ करता था।

कार्बन डायऑक्साइड लगभग एक वर्ष में धरती के वातावरण में सब तरफ फैल जाती है और एक अदृश्य रजाई या कम्बल की तरह काम करती है। जैसा कि हम सब जानते हैं, कि एक कम्बल स्वयं अपने से गर्मी पैदा नही करता बल्कि हमारे शरीर की गर्मी को रोक लेता है। उसी प्रकार कार्बन डायऑक्साइड, मीथेन, और नाइट्रस ऑक्साइड, धरती से टकराकर वापस जाती हुई सूर्य की उन अदृश्य गर्म विकिरणों को रोक लेती है।यही ग्लोबल वार्मिंग या वैश्विक तपन है। प्रत्येक वर्ष धरती के वातावरण में 50 अरब (एक अरब = सौ करोड़) टन कार्बन डायऑक्साइड, एवं

अन्य गैसों का इकट्ठा होना ऐसा ही है जैसे एक और रजाई या कम्बल हमने स्वयं धरती को ओढ़ा दिया हैं। एक अधिक मोटा कम्बल अधिक गर्मी रोकेगा।

ग्रीनहाउस गैसों के द्वारा रोकी गई अतिरिक्त गर्मी का 90प्रतिशत से अधिक समुद्रों में चली जाती है क्योंकि पानी में गर्मी सोख लेने की उच्च क्षमता होती है। समुद्रों का और अधिक गर्म होना जलवायु चक्र और वर्षा चक्र में बाधा पहुंचा रहा है, चक्रंवातों का अधिक तीव्र बना रहा है और समुद्र का जल स्तर को और उंचा कर रहा है। जो 7 प्रतिशत अधिक गरमी वातावरण में बचती है वह ग्लेशियरों (पर्वतों पर जो बर्फ की नदियां होती है उसे ग्लेशियर कहा जाता है) और बर्फ को पिघलाती है और मिटटी को गर्म करती है।

समय समय पर दुनिया भर में पृथ्वी की सतह पर हवा के तापमान का औसत के द्वारा ग्लोबल वार्मिंग को मापा जाता है। वातावरण कितने अधिक गर्म हो गई हैं? 1961-1990 के बीच भारत 24.87 डिग्री सेल्सियस औसत गर्म हुआ करता था। यह उन वर्षों में सभी मौसमों का औसत है; ध्यान देने की बात है कि इसमें लद्दाख की ऊंचाइयों की ठण्ड एवं दक्षिण भारत की गर्मी दोनों शामिल हैं। इस सदी में 2001-2010 के पहले दशक तक यह औसत 25.51 डिग्री तक बढ़ा गया। महत्वपूर्ण बात यह है कि यद्यपि इन वर्षों में तापमान अपेक्षा के अनुसार कम एवं ज्यादा हुआ लेकिन किसी भी एक वर्ष में यह 1960-61 के औसत तापमान से अधिक ठण्डा नही हुआ। सबसे ठण्डा वर्ष 1960-61 के औसत से 0.4 डिग्री अधिक गर्म था और सबसे गर्म वर्ष 1960-61 के औसत से 0.93 डिग्री अधिक गर्म था।

पूरी दुनिया में ग्लोबल वार्मिंग की क्या स्थिति है? इसकी तुलना 18वी सदी के मध्य के औद्योगिक क्रान्ति की शुरुआत के समय से की जाती है। दुनिया उस समय से 1 डिग्री सेल्सियस अधिक गर्म हो गई है। उस समय धरती का औसत 13.5 डिग्री सेल्सियस से जरा ज्यादा था जो अब 14.5 डिग्री सेल्सियस है। उल्लेखनीय है कि आर्कटिक, उत्तरी अफ्रीका, दक्षिण यूरोप और हिमालय जैसे क्षेत्र और

इकोसिस्टम्स (इस शब्द को हिंदी में पारिस्थितिक तंत्र कहा जाता है यानी यह विशेष प्राकृतिक प्रणालिया है जिनमें निर्जीव तत्व व जीवित प्राणियों का मिश्रित अवस्थान होता है) इस औसत से बहुत अधिक गर्म हो रहे हैं।

एक महत्वपूर्ण बिन्दु यह है कि कार्बन डायऑक्साइड के वातावरण में जाने के तुरन्त बाद ही ये पूरी गर्मी की वृद्धि नहीं होती है। गर्मी का समुद्र में पहुंचना और पूरी सतह के गर्म होने में कुछ वर्षों का अन्तराल रहता है। इसलिये पिछले कुछ दशकों में हमने जो अरबों टन कार्बन डायऑक्साइड की वृद्धि की है उससे उत्पन्न पूरी गर्मी अब भी महसूस करना बाकी है। अनिवार्य रूप से आनवाले समय में वर्तमान में हुए 1 डिग्री वृद्धि से इस गर्मी में 0.6 डिग्री सेल्सियस या सम्भवतः उससे भी अधिक और वृद्धि होगी ।

अखबारों द्वारा अक्सर 'ग्लोबल वार्मिंग' और 'जलवायु परिवर्तन' शब्दों का प्रयोग इस प्रकार किया जाता है कि यह पर्यायवाची है परंतु ऐसा नहीं है। ग्लोबल वार्मिंग की चर्चा अभी ऊपर की गई है। जब कि जलवायु परिवर्तन का संबंध समय के साथ मौसम का चरित्र, वर्षा, तूफान आदि में आ रहे बदलाव से है। यह ग्लोबल वार्मिग के सबसे महत्पूर्ण परिणाम है। आर्कटिक महासागर में समुद्री बर्फ का पिघलना, समुद्र का पानी गर्म होना, मिटटी का अधिक सूखना आदि ग्लोबल वार्मिंग के ही परिणाम हैं। इनमें से कुछ जलवायु परिवर्तन में योगदान करते है लेकिन यह जलवायु परिवर्तन नहीं हैं।

4. ग्लोबल वार्मिंग के लिये कौन जिम्मेदार है?

इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिये विभिन्न तरीकें अपनाये जा सकते हैं। एक तरीका यह है कि विभिन्न आर्थिक गतिविधियों के परीक्षण किया जाये। दुनिया भर में, 2010 में, कार्बन डायऑक्साइड एवं अन्य गैसों का कुल 5000 करोड़ टन उत्सर्जन हुआ। इसके 32 प्रतिशत के लिये औद्योगिक एवं विनिर्माण कार्य जिम्मेदार थे, 24 प्रतिशत के लिये कृषि एवं वनों का काटा जाना, 19 प्रतिशत के लिये घर एवं इमारतें, 14 प्रतिशत के लिये परिवहन एवं 11 प्रतिशत के लिये अन्य ऊर्जा

जिम्मेदार रहे (जलवायु परिवर्तन पर अध्ययन के लिए एक अंतर्राष्ट्रीय संगठन गठित किया गया है - इंटर्गवर्नमेंटल पैनेल ऑन क्लाइमेट चेंज जिसे संक्षिप्त में आई.पी. सी.सी कहा जाता है एवं यह आंकड़ें इस संगठन द्वारा किया गया शोध से प्राप्त हुआ है)। यद्यपि परिवहन सेकम उत्सर्जन हो रहा है यह सबसे तेजी से बढ़ते हुए क्षेत्रों में से एक है।

बढ़ोत्तरी को जानने का एक और तरीका यह है कि यह बढ़ोत्तरी कौन से भौगोलिक क्षेत्र से हो रही है, यह जानें। केवल 30 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्र से एवं ७० प्रतिशत शहरी क्षेत्र से हो रही है। शहरी क्षेत्र में एयर कंडीशनिंग यानी वातानुकूलन एवं मॉल्स में अत्यधिक अनुपयोगी खपत होती हैं। मुम्बई में 35 प्रतिशत से अधिक बिजली का उपयोग व्यक्तिगत एवं व्यावसायिक ए.सी. चलाने में होता है। शहरों में पुल, मेट्रो एवं फ्लायओवर जैसे बहुत सारे विनिर्माण एवं अन्य संरचनाएं हैं, जो लोगों द्वारा उपयोग में लायी जाती हैं एवं इन्हें बनाने में बहुत सारी ऊर्जा एवं संसाधनों की खपत हो जाती है।

तीसरा और बिल्कुल सामान्य तरीका है यह जांचना कि कौन सा देश कितनी अधिक कार्बन डायऑक्साइड उत्सर्जन के लिये जिम्मेदार है। वर्ष 2013 में कुल ३४०० करोड़ टन कार्बन डायऑक्साइड के उत्सर्जन में कंगारू की तरह छलांग लगाते हुए, चीन द्वारा लगभग 1000 करोड़ टन उत्सर्जन ने संयुक्त राज्य अमरीका द्वारा 530 करोड़ टन को पीछे छोड़ दिया। तीसरे नंबर पर भारत द्वारा 200 करोड़ टन उत्सर्जन था। इसके बाद रूस द्वारा 180 करोड़ टन और जापान द्वारा 140 करोड़ टन था। मीथेन और अन्य गैसों सहित भारत द्वारा कुल उत्सर्जन 300 करोड़ टन कार्बन डायऑक्साइड के बराबर किया गया। यदि प्रति व्यक्ति औसत बढ़ोत्तरी का आकलन किया जाये तो संयुक्त राज्य अमरीका व यूरोप द्वारा की गई उत्सर्जन की बढ़ोत्तरी, चीन द्वारा की गई उत्सर्जन की बढ़ोत्तरी से बहुत ज्यादा है। यदि ऐतिहासिक उत्सर्जन बढ़ोत्तरी का आकलन किया जाए कि औद्योगिक क्रान्ति की शुरुआत के समय से प्रत्येक देश ने अब तक कुल कितना उत्सर्जन किया तो अमरीका व यूरोप में यह और भी ज्यादा होंगें।

इन तरीकों में प्रत्येक की अपनी विशेषता है और यह हमारी न्यायपूर्ण मांगों को और मजबूत करेगी कि लोक परिवहन की सुविधा और बढ़ाया जाए या कि सम्पन्न व विकसित देश उनके द्वारा पारिस्थितिक तंत्र को पहुंचाए गए उन नुकसान का भुगतान करे जो उनके कारण हुआ है। लेकिन यह तरीके ग्लोबल वार्मिंग के केन्द्रीय समस्याओं का समाधान करने के लिए पर्याप्त नहीं है। ग्लोबल वार्मिंग के मूल में आधुनिक अर्थव्यवस्था को चलाने वाली शक्तियां है जैसे कि लाभ कमाने एवं विकास में वृद्धि के लिए होड़। भारत और दुनिया में आय, उपभोग एवं धन एकत्रण में लोगों के बीच बढ़ता हुआ अंतर भी ग्लोबल वार्मिंग के पीछे प्रामाणिक कारण हैं।

5. समस्या की जड़ें

कुछ लोगों का कहना है कि ग्लोबल वार्मिंग हजारों साल पहले ही शुरु हो गई थी। मनुष्य जैसे जैसे दुनिया भर में फैले, वैसे वैस वे वहां घर बसाने एवं खेती और जलाऊ लकड़ी के लिये जंगल काटना शुरू किया। एक काटा हुआ पेड़ सड़ते समय वातावरण में कार्बन डायऑक्साइड छोड़ता है। फिर चीन और भारत में चावल की खेती में सैंकड़ों वर्षों से ठहरा हुआ पानी उपयोग में लाया जाता रहा और नदियों में आए बाढ़ का पानी का भी खेती में उपयोग किया गया जिससे मीथेन उत्सर्जित होती रही। इसलिये ऐसे कहने वाले लोग पूरी तरह से गलत भी नहीं है। फिर भी १८वीं सदी के आखिरी समय में भूगर्भ से प्राप्त ईंधन की शक्ति से विकसित हुआ औद्योगिक पूंजीवाद, ग्लोबल वार्मिंग की रफ्तार में कुछ महत्वपूर्ण बदलाव लाया है जिसे समझे बिना इस चर्चा को आगे नहीं बढ़ाया जा सकता है।

पहला बदलाव था ऊर्जा के संसाधन के उपयोग में: यद्यपि कुछ सदियों पहले से कोयला, लंदन एवं कुछ अन्य शहरों में उपयोग में था फिरभी 18वी सदी के आखिरी समय में इंग्लैण्ड में इसका उपयोग कारखाना प्रणाली के विस्तार और रेलवे के विकास में बहुत बड़े पैमाने पर और अलग तरह से होने लगा। इसके बाद खनिज तेल को जलाने से कार्बन डायऑक्साइड उत्सर्जन सन 1870 में शुरू हुई और प्राकृ

तिक गैस के उपयोग से सन 1885 में; ये तीनों भूगर्भ से प्राप्त ईंधन बहुत ऊर्जावान और अधिक मात्रा में कार्बन वाले हैं।

दूसरा बदलाव था कि लाभ प्राप्ति, किसी भी तरह से क्यों न हो, विकास की प्राथमिक चालक शक्ति हो गई। कम्पनियां सबसे सस्ते श्रम और कच्चे माल का उपयोग करके लाभ कमाते है। मजदूरों से अधिक लम्बे समय तक और तेजी से काम करवा कर लाभ लेते हैं। कम्पनियां सामान्य जनता के सार्वजनिक संसाधनों, जैसे कि जंगल, समुद्र तट और नदियों पर अपना नियंत्रण प्राप्त करके, प्रकृति के शोषण से भी लाभ लेती हैं। यह संयोग की बात नहीं है कि चीन पिछले कुछ ही वर्षों में सबसे अधिक कार्बन डायऑक्साइड की उत्सर्जन में बढ़ोत्तरी करने वाला देश हो गया है। क्योंकि दुनियाभर से बहुत सारे विनिर्माण कार्य चीन में ले जाये गये क्योंकि वहां बहुत सारा कोयला और सस्ता श्रम उपलब्ध है। इसके लिए चीन के लोगों को और संसार को बहुत बड़ी पारिस्थितिकीय कीमत चुकानी पड़ी है। यह इसलिए कि व्यापारिक निगम लोगों एवं पर्यावरण की स्थिति बिगड़ने की परवाह किये बिना समाज एवं पर्यावरण के हितों की अनदेखी कर अपने लाभ बढ़ाने के प्रयास में ही रहते हैं।

वे अपने व्यापार को बढ़ाने के लिये लाभ में से कुछ राशि कंपनी में फिर से निवेश कर देते हैं। यह बचत का निवेश एक प्रबंधक या व्यापारी की व्यक्तिगत जिद या चाहने पर निर्भर नहीं है बल्कि सभी के लिये एक अनिवार्यता है। जो कंपनियां ऐसा नहीं करती हैं, कुछ समय के बाद उनमें स्थिरता आ जाती है और वे बन्द हो जाती हैं या फिर दूसरी कंपनियों द्वारा निगल ली जाती हैं। और चूंकि यह एक अनिवार्यता है, इसलिये वे फिर से निवेश करने और विस्तार करने को रोकने का प्रयास भी नहीं कर सकते हैं। कमाएं गए लाभ में से बचत कर निवेश और विकास करना पूंजीवादी विकास का एक अभिन्न हिस्सा है।

परिणाम स्वरूप, विश्व की अर्थव्यवस्था, जो सन 1700 से हजारों साल पहले की दौर में मुश्किल से प्रति वर्ष केवल 0.1 प्रतिशत बढ़ी थी, उसके बाद के समय में बहुत तेजी से बढ़ी है। एक राज्य, एक देश, अथवा पूरी दुनिया के आर्थिक विकास

की गणना करने हेतु किए गए उत्पादन एवं प्रदत्त की गई सेवाओं के कुल मूल्य में वृद्धि या गिरावट का दर या एक समयावधि (सामान्य रूप से एक साल) की कुल आय का आंकलन किया जाता है। विश्व की अर्थव्यवस्था का विकास जो सदियों पहले बहुत धीमी थी, 1700 और 2012 के बीच बहुत तेजी से 1.6 प्रतिशत प्रति वर्ष और पिछले साठ वर्षों में 3.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष से भी अधिक की दर से विकसित हुई है। सन 1820 में वैश्विक उत्पादन 694 अरब डॉलर था, 1917 में यह 27 खरब (एक खरब = एक सौ अरब) डॉलर हो गया था, 1973 तक यह 160 खरब डॉलर और 2003 में 410 खरब डॉलर हो गया था। वर्तमान में विश्व का वार्षिक सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) यानी सभी देशों द्वारा अपने देश के अदंर किए गए कुल आर्थिक कार्य लगभग 730 खरब डॉलर है। यह लगातार और ऊंची दर पर बढ़ते रहता है। जाहिर है कि विकास दर अगर इस कदर बढ़ेगा तो उसके कारण हो रहा कार्बन डायऑक्साइड का उत्सर्जन भी बेतहाशा बढ़ेगा। 18वी सदी के मध्य से उत्सर्जित कुल कार्बन डायऑक्साइड का आधा उत्सर्जन केवल पिछले 30 वर्षों में हुआ है।

वर्तमान में विश्व की आर्थिक विकास दर 3 प्रतिशत है और यह उम्मीद है कि यह वार्षिक दर सन 2050 तक जारी रहेगी। जीडीपी के समान कार्बन उत्सर्जन की दर मे बढ़ोत्तरी नहीं होती है। यह इसलिए कि मनुष्य द्वारा की जा रही विभिन्न गतिविधियों में ऊर्जा की खपत का प्रकार भिन्न भिन्न होती है एवं इसलिए कार्बन उत्सर्जन की दर भी भिन्न होती है। पिछले 25 वर्षों में पूरी दुनिया में वैश्विक जीडीपी विकास दर में प्रत्येक 1 प्रतिशत वृद्धि की तुलना में कार्बन डायऑक्साइड उत्सर्जन में 0.5 प्रतिशत की वृद्धि हुई है अर्थात् जीडीपी विकास दर से आधा। अब चीन में कोयले की खपत कम हो जाने के कारण इसमें थोड़ा सुधार हो सकता है। फिर भी ३ प्रतिशत जीडीपी की वार्षिक वृद्धि दर का मतलब है कार्बन डायऑक्साइड उत्सर्जन में औसतन 1-1.5 प्रतिशत की वृद्धि।

एक महत्वपूर्ण बिन्दु को फिर से दोहराते हुए यह स्पष्ट करना चाहुंगा कि पूंजी एकत्रित करने और लाभ कमाने की प्रवृत्ति ही दुनिया की पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की

संचालक शक्ति है और इसीलिये यह ग्लोबल वार्मिंग की जड़ है। जो लोग राष्ट्र-राज्य या दूसरे किसी संदर्भ में इसका विश्लेषण करते हैं, वे इस प्रमुख तर्क को नज़र अंदाज कर देते हैं। अधिकांश बैठकों में, जिनमें मैं शामिल हुआ हूं, लोग पूंजीवादी औद्योगिक विकास एवं ग्लोबल वार्मिंग के बीच इस घनिष्ट संबंध के बारे में मौन रहे हैं। यदि आपने पहले ही समस्या को सही तरीके से समझा या परिभाषित नहीं किया तो आप इसके निराकरण की उम्मीद नहीं कर सकते हैं।

6. घरेलू उपभोग और वर्ग

अपने घरों में नियमित रूप से हम कितने उपकरणों का उपयोग करते है? कितने बल्ब, पंखे, वाटर हीटर, टोस्टर, रेफ्रिजरेटर, ए.सी.? क्या सायकल, बस अथवा कार चलाते हैं? कार्बन का उत्सर्जन इन सब बातों पर निर्भर करता है। जब हम शहर से बाहर जाते हैं तो क्या बस से या ट्रेन से या हवाई यात्रा करते हैं। उदाहरण के लिये यदि आप वारंगल से दिल्ली की 1,545 कि.मी. की रेल यात्रा करते हैं तो कार्बन डायऑक्साइड उत्सर्जन का आपका हिस्सा लगभग 35 किग्रा होगा। एक हवाई जहाज में इसी दूरी के लिए एक यात्री 200 कि.ग्रा. से ज्यादा उत्सर्जित करेगा।

निश्चित रूप से ये सब बातें किसी की आय और उपभोग पर निर्भर करती हैं। भारत में सरकारी नीतियों के कारण पिछले 25 वर्षों में लोगों के बीच आय और सम्पत्ति में बहुत बड़ा अन्तर गहरा गया हैं। अति धनवानों की संख्या में एकाएक विस्फोटक रूप से बढ़ोत्तरी हुई है, जबकि उसी समयावधि में अगर महंगाई के असर को अलग करके कारखानों में काम करने वालों की मजदूरी का आंकलन किया जाए, जिसे वास्तविक मजदूरी कहा जाता है, तो 1996 की तुलना में 2014 में 5 प्रतिशत की गिरावट आई है। यह बढ़ती हुई असमानता का असर, ऊर्जा तक पंहुच और उसका उपयोग करने में दिखाई देता है। जैसे कि भारत की बिजली उत्पादन क्षमता में यद्यपि पिछले दशक में 3,00,000 मेगावॉट तक तीन गुना बढ़ोतरी हुई है, फिर भी शहरी क्षेत्रों में 2.5 करोड़ लोग सहित 30 करोड़ लोग अपने घरों में अभी तक

बिजली नहीं ले पाये हैं और अन्य 30 करोड़ लोगों को कुछ ही घंटे प्रतिदिन बिजली मिलती है।

एक साथी ने दिल्ली के कॉलेजों में कार्यशालाओं का आयोजन यह मापने के लिये किया कि एक घर-परिवार से कितनी कार्बन डायऑक्साइड का उत्सर्जन होता है। उनकी मदद से संख्या पर काम करते हुए हमने पाया कि दिल्ली का मध्यम वर्ग का प्रत्येक व्यक्ति प्रतिवर्ष 4-5 टन कार्बन डायऑक्साइड का उत्सर्जन करता है जबकि भारत में एक धनी वर्ग का व्यक्ति उनसे बहुत ज्यादा, यूरोप के स्तर का उत्सर्जन करता है। आखिरकार गरीब वर्ग के कारखाना मजदूर या सुरक्षाकर्मी जो रु. 6000-7000 प्रति माह कमाते हैं, घरेलू नौकर जो उनसे भी कम कमाते हैं, खेतिहर मजदूर जो उनसे भी और कम कमाते हैं, ज्यादा से ज्यादा कितनी कार्बन डायऑक्साइड का उत्सर्जन कर सकते हैं?

वर्तमान उपभोग और आय से होने वाला उत्सर्जन की असमानता व्यक्तियों के मालिकाना के उत्पाद और संपत्ति के विनिर्माण के दौरान हुए कार्बन उत्सर्जन से और ज्यादा हो जाता है। उदाहरण के लिये एक कार, जो दिल्ली में सिर्फ 10 प्रतिशत लोगों के पास ही है, को बनाने में लगने वाले एल्यूमिनियम के उत्पादन में 3500 किलो कार्बन डायऑक्साइड का उत्सर्जन होता है, क्योंकि बाक्साइट के शुद्धिकरण और उससे एल्यूमिनियम बनाने की प्रक्रिया सघन ऊर्जा लगने वाली प्रक्रिया है। एक घर के संदर्भ में - किसी का बड़ा और पक्का मकान उतना ही ज्यादा उत्सर्जक है, क्योंकि सीमेंन्ट उत्पादन एल्यूमिनियम उत्पादन जैसे ही कार्बन उत्सर्जन का बड़ा स्रोत है और भारत के ऊपरी मध्य वर्ग या अमीर वर्ग में कम से कम दो घर रखना सामान्य हो गया है, एक रहने के लिए और अन्य एक पहाड़ी क्षेत्र में छुट्टी मनाने के लिए। कुछ लोगों के पास तीन भी होते हैं। जब कि शहरी गरीब व्यक्ति को झुग्गी झोपड़ियों में ही रहना पड़ता है एवं अकसर उन्हें वंहा से भी भगाकर पक्के निर्माण किया जाता हैं।

ग्लोबल वार्मिंग के विश्लेषण के लिये राष्ट्र-राज्य का ढांचा को इसलिए चुना जाता है ताकि आय और संपत्ति के इस विशाल अंतर को अनदेखा किया जाए। जैसे - भारत सरकार कहती है कि भारत में प्रति व्यक्ति उत्सर्जन कम है। यह हमारी सरकार का देश की विशाल गरीबी के पीछे छुपने का प्रयास है। कुछ साल पहले योजना आयोग की एक रिपोर्ट से प्रकट हुआ कि 80 करोड़ भारतीय प्रतिदिन 20 रुपये से कम की उपभोग करते है। ग्लोबल वार्मिंग को कम करने को लेकर अन्तर्राष्ट्रीय वार्ताओं में हमारी सरकार ने देशों के बीच इसके लिए जिम्मेदारी में न्यायपूर्ण बंटवारा के लिये सही तर्क दिया हैं। यानी क्योंकि विकसित देश अधिक कार्बन उत्सर्जन किए है और कर रहे है इसलिए उन्हें इसको कम करने के लिए अधिक खर्च और कार्य करने होंगें एवं उन्हें विकासशील देशों को भी मदद करनी होगी। लेकिन न्यायपूर्ण बंटवारा का सिद्धान्त केवल देशों के बीच ही नहीं बल्कि देश के भीतर भी लागू होना चाहिये। यानी भारत में अमीर वर्ग को वर्तमान में उनके द्वारा किए जा रहे उपभोग में कमी करनी चाहिए, क्योंकि यही एक तरीका है जिससे गरीब लोगों को पारिस्थितिक तंत्र को नुकसान पंहुचाए बिना अपना जीवन सुधार करने के लिए अवसर मिलेगा। यह कैसे सुनिश्चित किया जाये कि ग्लोबल वार्मिंग को कम करके भी अच्छा काम और रोजगार के अवसरों में बढ़ोत्तरी हो ताकि करोड़ों लोगों को अच्छी आजीविका मिलें, यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है।

7. ग्लोबल वार्मिंग के प्रभाव

भारत और अन्य जगहों पर ग्लोबल वार्मिंग का प्रभाव जानने से पहले कुछ बातों को ध्यान में रखना उपयोगी होगाः

- लगभग 40 साल पहले दुनिया के विभिन्न हिस्सों में इसके प्रभाव की शुरुआत का अनुभव किया जाने लगा लगभग 1970 के दशक के मध्य से।
- प्रदूषण के अधिकांश अन्य रूपों से अलग कार्बन डायऑक्साइड का प्रभाव इसके स्रोत से बहुत दूर तक महसूस किया जा सकता है। अमेरिका में उत्सर्जित होने वाले कार्बन डायऑक्साइड मालदीव को प्रभावित करता है।

- कार्बन डायऑक्साइड का एक महत्वपूर्ण हिस्सा वातावरण में हजारों साल तक रहता है। इसका उत्सर्जन बन्द होने के बाद भी जलवायु परिवर्तन एक हजार साल के लिये होता रहता है। इसलिये जलवायु परिवर्तन स्थायी रूप धारण कर लिया है एवं यही नई 'सामान्य' स्थिति बन गई है।
- इसके प्रभाव और अधिक बुरे होंगे, जिनमें कुछ तो अनिवार्य हैं। **ये और अधिक नही बिगड़ें और परिस्थिति हमारे नियंत्रण से बाहर न हो, इसके लिये तत्काल हमारा हस्तक्षेप की जरूरत है।**

7.1. भारत में ग्लोबल वार्मिंग के प्रमुख प्रभाव

भारत में छोटे और सीमांत किसान, शहरी गरीब और दूसरे अन्य समुदाय के लोग द्वारा झेली जा रही अन्य समस्याओं को ग्लोबल वार्मिंग और विकराल कर देती है - बीज, खाद और खेती मे लगने वाली अन्य सामग्रियों की और ऊंची कीमतें; जमीन के पानी का गिरता स्तर; छोटे स्तर पर खेती का कम व्यवहार्य होना, दलित समुदाय के लोगों में भूमिहीनता, सामुदायिक संसाधनों का औद्योगिक और गृह निर्माण कंपनियों द्वारा अधिग्रहण किया जाना, आदिवासियों से गैर आदिवासियों को भूमि का हस्तांतरण, महिलाओं के नाम पर जमीन का न होना, बढ़ती कीमतें, आदि। भारतीय समाज में बरकरार अनेक असमानताओं से जलवायु परिवर्तन पर प्रभाव भी पड़े है और इस परिवर्तन के कारण असमानताएं और विकराल भी हुए हैं। लाखों छोटे और सीमांत किसानों, जो देश के कुल किसानों के 87 प्रतिशत हैं, खेतिहर मजदूर, गरीब महिलाएं और अन्य सामाजिक समूहों के लिये जलवायु परिवर्तन आखिरी लाठी होगी जो उनकी पीठ तोड़ देगी! यह न्याय के सबसे बुरे उल्लंघनों में से एक है कि जो ग्लोबल वार्मिंग के लिये सबसे कम जिम्मेदार है वह ही उसका बोझ सबसे ज्यादा उठाते है।

1. **अनियमित बारिश और ओले** - भारत में जलवायु परिवर्तन का सबसे व्यापक प्रभाव वर्षा पर हुआ है। किसानों का कहना है कि पहली बार 15-20 साल पहले उन्होंने इसमें बदलाव को देखा था लेकिन पिछले 5-6 सालों में इसमें तेजी आई है।

आजकल बारिश तब होती है जब नहीं होनी चाहिये और जब होनी चाहिये तब नहीं होती है। कुछ स्थानों पर दक्षिण पश्चिम मानसून जल्दी आने लगा है और अन्य जगहों पर देरी करता है। किसान बारिश की आस में फसल बोते हैं पर या तो वह नहीं आती है या देर से आती है। या फिर फसल कटने या खलिहान के समय बहुत तेज बारिश होती है जो खड़ी या कटी फसल और चारे को नुकसान पहुंचाती है। ओलावृष्टि में भी पहले से वृद्धि हुई है, उस क्षेत्र में भी जहां पहले कभी नहीं हुई। लगातार सन 2013, 2014, और 2015 के बसंत के मौसम में इस बेमौसम की बारिश से लाखों किसान प्रभावित हुए एवं बहुतों को नुकसान हुआ। 2015 में इसने 15 राज्यों में 1.8 करोड़ हेक्टेयर जमीन की फसल, जो की पूरे रबी फसल के रकबे की विशाल 30 प्रतिशत है, को तबाह किया एवं इस कारण से 20,000 करोड़ रुपये का घाटा हुआ। इससे किसानों की आत्महत्याओं की जैसे बाढ़ आ गई।

यह चिन्ता की बात है कि इतनी कठोरता के साथ लगाातार खेती का नुकसान हो रहा है। पिछले 4-5 सालों में हर साल खेती पर बुरा असर हुआ है दोनों खरीफ और रबी फसलों पर। यदि एक साल में सूखा पड़ा, तो दूसरे में ओला गिरा और तीसरे में तेज बारिश हुई। किसानों को लगातार इन संकटों से मुकाबला करना पड़ रहा हैं। भारत में आवश्यक फसलें आज भी वर्षा पर अत्यधिक निर्भर करती हैं; जैसे कि धान और गेहूं के फसल का आधा हिस्सा सिर्फ वर्षा पर निर्भर है। जहां भूजल उपलब्ध नहीं है वहां सूखी जमीन वाले छोटे और सीमांत किसान, जो अधिकांश गरीब है, जलवायु परिवर्तन का यह आघात सहने को मजबूर है। ये लोग अक्सर दलित या पिछड़ी जाति या आदिवासी समुदाय के लोग होते हैं। इसके अलावा जब खेती को बड़े पैमाने पर चोट पहुंचती है तो खेतिहर मजदूरों को भी आमदनी का नुकसान होता है। ऐसे समय में उन्हें सरकार द्वारा जल्द से जल्द मुआवज़ा देने के बजाय उनको नजर अंदाज़ किया जाता है।

2. **कम समय में बहुत तेज बारिश** - पहले एक मानसून सत्र में एक समान तो नहीं पर उचित और भरोसेमंद बारिश हुआ करती थी। किसान इसकी असमानता से परिचित होते हुए इसके प्रकार के अनुसार विभिन्न संस्कृतियों में इसका स्थानीय

नामकरण करते हैं। परंतु अधिकांश स्थानों में आजकल कई दिनों तक बारिश नहीं होती है और फिर कुछ ही घंटों में या 1-2 दिनों में बहुत सी बारिश हो जाती है। यह सब समुद्र की गर्म सतह के तापमान से जुड़ा हुआ है। यह इसलिये भी होता है, क्योंकि गर्म हवा में अधिक नमी को रोकने की क्षमता होती है। थोड़ी और गर्म होने पर यह और तेजी से फटती है। इस तेजी से फटने से होने वाली बारिश खड़ी फसलों को नुकसान पहुंचाती है, फसल के नए पौधों को प्रभावित करती है और खेत की ऊपरी सतह की मिटटी को खराब करती है। यह बाढ़ होने का कारण बनती है और लोगों की पानी की उपलब्धता को प्रभावित करती है।

किसी एक तेज बारिश या सूखे की घटना के लिये जलवायु परिवर्तन को संभावित कारण नहीं बताया जा सकता है क्योंकि जलवायु परिवर्तन एक प्रक्रिया है, न कि एक घटना। फिर भी 2013 में उतराखण्ड में आयी विशाल बाढ़ संभवतया देश के लोगों द्वारा सामना किया गया सबसे खराब जलवायु परिवर्तन आपदा है। एक विशाल क्षेत्र में बहुत तीव्र बारिश की मार पड़ी, वह भी ३ दिनों तक। राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण ने कहा कि 11,000 लोग मारे गये होंगे। मरने वालों की वास्तविक संख्या का आंकलन कभी नहीं हो पायेगा क्योंकि पर्यटन के मौसम में कई जगहों से आये नेपाली और भारतीय प्रवासी कामगार वहां काम कर रहे थे। सबसे ज्यादा जन-जीवन की हानि केदारनाथ, रामबाड़ा और उसके आसपास हुई। केदारनाथ के ठीक ऊपर तीव्र बारिश से एक पहाड़ी झील चोराबारी की दीवार फट गई। पानी की बड़ी लहरें नीचे की ओर दौड़ीं और शहर को बर्बाद करते हुए चीजों और व्यक्तियों को या तो बहा ले गई या मिट्टी और चट्टानों के बीच दबा दी।

उत्तरकाशी, रुद्रप्रयाग, चमोली, और पिथौरागढ़ जिलों और उस से भी आगे के सैकड़ों गांव तबाह हो गये। विभिन्न नदि घाटियों में गांव के बाद गांव पानी में डूब गये, घर मकान बह गये, खड़ी फसलें नष्ट हो गई, खेतों में नदियों का पानी और मलबा भर गया। जिन पालतू पशुओं पर स्थानीय निवासी दूध और खाद-गोबर के लिए निर्भर करते हैं वह भी पानी में डूब गये। पर्यटन पर आघात हुआ जिस पर लाखों स्थानीय और प्रवासी कामगार श्रमिक नौकरी और आय के लिये निर्भर करते

थे। बच्चों के स्कूल जाने की स्थिति नहीं रही। विशेष रूप से महिलाओं पर बहुत बुरा असर पड़ा क्योंकि उन्हें ही घर सम्भालना, खाना पकाना और मवेशियों के लिये चारे की व्यवस्था करनी होती है।

जैसा कि सामान्यतः होता है, अंधाधुंध विकास कार्यों से ही उत्तराखण्ड में विनाश की इतनी बुरी स्थिति बनी है। जलविद्युत परियोजनाओं का निर्माण के लिये पहाड़ियों में विस्फोट करना, पत्थरों का भराव करना, सड़कों का असुरक्षित रूप से चौड़ा किया जाना, नदियों के किनारे पर्यटकों के लिये अस्थायी घटिया निर्माण किया जाना, इसके उदाहरण है। यह चिंता का विषय है कि भारत के हिमालय क्षेत्र में पश्चिम में हिमाचल प्रदेश से लेकर पूर्व में अरुणाचल प्रदेश तक विशाल जलविद्युत परियोजनाओं और इसी के तरह अन्य अनियंत्रित विकास कार्यों की अनेक परियोजनाएं क्रियान्वित किया जा रहा है।

3. **अनेक स्थानों पर सूखा** - मध्य भारत के उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश राज्यों में विस्तृत बुंदेलखण्ड के कुछ हिस्सों में पिछले 15 सालों से सूखे की स्थिति बनी हुई है। ग्लोबल वार्मिंग देश के आन्तरिक क्षेत्रों में सूखा के प्रकोप को बढाता है और पहले से ही सूखा मौसम वाले जगहों पर मिट्टी को और सूखा कर देता है। जब कुछ साल पहले हमारी टीम बुंदेलखण्ड गई तो देखा गया कि खेती कार्य पूरा नष्ट हो चुका था। बड़ी झीलें पहली बार सूख गई, लाखों खेतिहर मजदूर, छोटे किसान ओर गरीब महिलायें अपने पूरे परिवार के साथ मजदूरी के लिए पलायन कर रहे थे। पानी और चारे के अभाव में पशुधन मौत को सौंप दिया जा रहा था। जो सर्वेक्षण टीमें 2015 में बुंदेलखण्ड गई उसने पाया कि वही भयावह स्थिति बनी हुई है।

भारत के उन हिस्सों में भी अब सूखा होने लगा है जहां पहले मुश्किल से ही या कभी भी सूखा नहीं पड़ा - उत्तरपूर्व का हिस्सा, सन 2000 से झारखण्ड का हिस्सा, केरल में अभी अभी। यह अब बार बार होने लगा है कि एक स्थान पर सूखा है और समीप के स्थान पर बाढ़। सन 2015 में भारत अपने पिछले दशकों में सबसे बुरे सूखाकाल से ग्रस्त था; 13 राज्यों के 40 करोड़ लोग इससे बुरी तरह प्रभावित हुए थे।

महिलाओं को इससे बहुत ज्यादा धक्का लगता है। बुंदेलखण्ड में हमने देखा कि बुजुर्ग महिलाएं कुछ बचे खुचे चालू हैंड पम्पों का उपयोग नहीं कर पाती हैं क्योंकि पानी का स्तर बहुत गहराई तक पहुंच गया है जहां से पानी खींचने की ताकत उनमें नहीं है। जब खाद्य सामग्री की आपूर्ति घटती है तब पुरुषवादी समाज व्यवस्था में महिलाओं को कम खाकर ही संतोष करनी पड़ती है। क्योंकि गरीब महिलायें घर और बाहर के सारे काम करती हैं - पानी लाना, किसानी के कार्य, चारा और जलाउ लकड़ी की व्यवस्था, मजदूरी के कार्य - इसलिए जलवायु परिवर्तन का प्रकोप सब से अधिक उन्हीं पर पड़ता है।

4. **हिमालय/ गढ़वाल पहाड़ी/ हिमाचल क्षेत्र में** - औसत रूप से हिमालय 1.5 डिग्री सेल्सियस गर्म हुआ है जो कि भारत के तापमान बढ़ने की औसत से दो गुना से ज्यादा है। यह बढ़ोत्तरी सर्दियों के मौसम में और भी ज्यादा है; पूरे भारत में ठण्ड का मौसम छोटा होता जा रहा है और उसका तापमान बढ़ते जा रहा है पर यह बदलाव ऊंचाई वाले क्षेत्रों में और अधिक है। कश्मीर और लद्दाख में कम सर्दी के कारण बर्फबारी में बदलाव आया है एवं मध्य और ऊंचाई के क्षेत्रों में बर्फबारी कम हो गई है। बर्फबारी के बजाय बारिश गिरने लगी है। या फिर गलत समय आर मौसम में बर्फबारी होती है। छोटे ग्लेशियर गायब हो रहे हैं और बड़े ग्लेशियर ऊपर व नीचे से पिघलने लगे हैं। ये सब लोगों के पीने के व सिंचाई के लिये पानी की उपलब्धता पर गम्भीर प्रभाव डालते हैं। कहीं झरने सूखने लगे हैं जिन पर स्थानीय लोग निर्भर हैं और कहीं पहाड़ी क्षेत्रों में जंगल में आग लगने की घटनाओं और कीटों में वृद्धि हुई है।

अन्य प्रजातियां भी इससे प्रभावित हुए हैं। ओक के पेड़, सेब के पेड़, सब्जियाँ, रेंगने वाले जीव, तितलियाँ, पक्षी और अन्य पशुवर्ग ये सभी अपने रहने के अनुकूल तापमान की खोज में पहाड़ की ढलाई पर और ऊपर चढ़ने लगे हैं। चारागाह सिमट गये हैं और अल्पाइन प्रजाति विलुप्त होने के खतरे का सामना कर रहे है। कई प्रजाति पहले से ही पहाड़ के शिखरों पर हैं, यदि इसी तरह गर्मी बढ़ती रही तो यह और कितनी दूर तक चढ़ सकेंगे?

5. **स्वास्थ्य पर प्रभाव** - कई बातें स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालती हैं; जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को अलग करना न तो आसान है और न ही आवश्यक। जलवायु परिवर्तन के परिणाम स्वरूप कम भोजन की उपलब्धता के कारण गरीब वर्ग में पोषण की कमी हो गई है। समय के साथ यह स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव डालता है। अन्य बातों के साथ साथ जलवायु परिवर्तन के कारण पिछले कुछ वर्षों में खाद्य सामग्री की कीमतों में वृद्धि हुई है। पिछले एक वर्ष में मध्य भारतीय क्षेत्र में खाद्य पदार्थों की कमी से गरीबों में मृत्यु दर और गंभीर बीमारियों में बढ़ोत्तरी हुई है। दिल्ली व अन्य स्थानों पर यह शहरी गरीबों को भी चोट पहुँचा रहा है।

मैदानी इलाकों एवं पहाड़ी स्थानों में ठण्ड कम होने के साथ ही मच्छरजनित बीमारियाँ जैसे मलेरिया, डेंगू, और चिकनगुनिया का प्रकोप व्यापक हो जाता है; सामान्य रूप से कम ठण्डे मौसम में वायरस और बैक्टीरिया अधिक पनपने लगते है। भारत के विभिन्न हिस्सों में गर्मी की लहरों की संख्या, क्षेत्र और अवधि में भी वृद्धि हुई है। इससे तीव्र गर्मी जनित तनाव, दीर्घकालिक किडनी रोग एवं मौतें होती है। विशेष रूप से गरीब और वृद्ध, बेघर और वे लोग जो लम्बे समय बाहर काम करते हैं, इससे अधिक पीड़ित होते है। उदाहरणतः हाल के वर्षों में ओड़ीशा में गर्मी जनित दौरा के कारण मरने वालों की संख्या में वृद्धि हुई है। भविष्य में सबसे खतरनाक प्रभावों में से एक यह है कि भारत का विशाल क्षेत्र बल्कि पूरे दक्षिण एशिया का बड़ा हिस्सा, बसाहट के अयोग्य बन जाएगा। अधिक गर्मी और नमी दोनों एक साथ मिलकर मनूष्य शरीर की अपनी गर्मी को वातावरण में छोड़ने की प्रक्रिया को नकारात्मक रूप से प्रभावित करेगी।

6. **तटीय क्षेत्र** - भारत में पिछले 30 वर्षों में तटीय क्षेत्र के निवासियों ने अनुभव किया है कि समुद्र का पानी अपेक्षाकृत गर्म होने के कारण समुद्र तल का स्तर ऊँचा हुआ है - गुजरात, सुन्दरबन और अन्य कई जगहों पर। उनके लिये इसका प्रभाव यह हुआ है कि उनकी जमीन, गाँव और मकानों का धीमी गति से कटाव हुआ है एवं कुओं और खेतों का लवणीकरण हुआ है जिस वजह से हजारों लोगों को आजीविका की खोज में पलायन करना पड़ा है।

करोड़ों लोग भारत के तटीय क्षेत्रों में फैली हुई उपजाऊ भूमि पर खेती, मछली पालन व अन्य आजीविका के कार्य करते हैं। वैसे भी वर्तमान में बड़े बन्दरगाह, वृहद विद्युत संयंत्र और अन्य परियोजनाएँ तटीय क्षेत्रों में लोगों को विस्थापित कर रहे है और खेती, पानी के स्रोत और स्थानीय पारिस्थितिकी तंत्र को नुकसान पहुंचा रहे है और तटरेखा का कटाव कर रहे हैं। अब इसमें जलवायु परिवर्तन का बुरा असर भी जुड़ गया है। कर्नाटक के मछुआरों ने बताया कि उनका समुद्र में जाना अब और अनिश्चित हो गया है क्योंकि बारिश और तूफान के आने का स्पष्ट संकेत अब नहीं मिलते है। समुद्र तल की लहरें और धाराएँ अप्रत्याशित रूप से बदल रही हैं। हवा के रुख के बारे में अनुमान नहीं लगाया जा सकता है। मछली पकड़ने के बाद किये जाने वाले कार्य के लिए, जो अक्सर मछुआरिनें करती हैं, जगह सिमटती जा रही है, क्योंकि समुद्र पास आते जा रहा है।

समुद्र तल के तापमान में वृद्धि के कारण पूर्वी तटीय क्षेत्र में तूफानी लहरें व अधिक तीव्रता के तूफान आते हैं। सम्भतया 2013 के आखिर में आया अधिक तीव्रता वाला फायलीन तूफान इसके कारण ओड़ीशा और आन्ध्र प्रदेश में अधिक तबाही मचाई थी। तूफान के साथ आया हुआ खारा पानी बहकर भूजल में मिल गया और तटीय खेती और पीने के पानी के स्रोतों को नुकसान पहुँचाया।

7. **शहरी क्षेत्रों पर प्रभाव** - गर्म हो रही इस दुनिया में शहर में रहने वाले लोगों पर बढ़ती हुई गर्मी का प्रभाव पड़ रहा है। जलवायु परिवर्तन से खेती पर पड़ रहे प्रभाव के कारण खाद्य सामग्रियों की कीमतें बढ़ रही हैं। बाढ़ या फिर सूखे के कारण यह दुष्प्रभाव सबसे अधिक होते हैं। 2016 में महाराष्ट्र के लातूर में पड़े विशाल सूखे की स्थिति यह है कि लातूर शहर के निवासियों के लिये ट्रेन द्वारा पानी की आपूर्ति की जा रही है। मराठवाड़ा के कुछ शहर पानी के लिये तरस रहे हैं। दूसरी ओर हाइड्रोलॉजिकल चक्र (प्रकृति में पानी का चक्र जिसके कारण वर्षा होती है) में परिवर्तन के कारण कुछ शहर अति वर्षा की घटनाओं से बाढ़ की चपेट में आ गये है। हाल ही में दिसम्बर 2015 में चैन्नई में 1 दिन में 340 मि.मि. बारिश हुई और इससे पहले सितम्बर 2014 में श्रीनगर और जून 2005 में मुम्बई के

अति वर्षा के उदाहरण तो है ही। इन सभी मामलों में, नालों के आसपास के नीचे के इलाकों में झुग्गी बस्तियों के कम मजबूत मकानों में रहने वाले शहरी गरीबों, दिहाड़ी मजदूरी करने वाले लोग एवं गरीब महिलाओं को इनके आघातों का अधिक सामना करना पड़ा है। ऐसी घटनाओं में लाभ कमाने के लालच से किए गए बिना सही नियोजन के विकास कार्यों के कारण जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभाव और बदतर हो जाते है - उत्तराखण्ड में नदी के बहाव पर स्थापित परियोजनाएँ, मुम्बई में बिल्डरों की लॉबी द्वारा नालों और जल निकासी पर बनाए गए मकान और चैन्नई में जलाशयों को मिट्टी से भरकर बनाए गए मकान। यह सवाल तर्कसंगत है कि यह विकास किसको लाभ पहुँचा रहा है?

एक पुस्तिका में जिन अनेक तरहों से जलवायु परिवर्तन हमें प्रभावित कर रहा है उसके बारे में विस्तृत रूप से लिखना आसान नहीं है। जैसे कि आदिवासी और जंगलों पर निर्भर अन्य समुदाय पर ग्लोबल वार्मिंग के कारण उपयोगी वृक्षों और वनस्पतियों के मिश्रण में आया बदलाव का क्या प्रभाव पड़ता है। या ऐसे औषधीय पौधों, जिन पर वे निर्भर करते है, के विलोपन और उपयोगी वनस्पतियों का पहाडों के ऊपर की ओर ऊंची ढलान पर चले जाने का उन पर क्या असर पड़ता है?
हमें यह महसूस करने की आवश्यकता है कि जलवायु परिवर्तन के जो दुष्प्रभाव बताये गये हैं वे और अधिक तीव्रता से एक ही साथ होने वाले हैं। एक जगह समुद्र तल ऊँचा होगा तो दूसरी जगह सूखा, उसके आसपास ही बाढ़, ओलावृष्टि और तेज बारिश होगी। यह हर जगह सबसे अधिक गरीबों की खाद्य सुरक्षा, पानी की उपलब्धता, आजीविका, भूमि, और स्वास्थ्य पर आघात करेगा।

7.2 संसार के अन्य जगहों पर प्रभाव

- पिछले 20 सालों में समुद्र तल औसत रूप से 3.2 मि.मि. प्रति वर्ष की दर से ऊँचा हो रहा हैं।
- 1970 के दशक के मध्य से अफ्रीका के कुछ हिस्सों में लगातार सूखा पड़ा है।

- अति हानीकारक प्राकृतिक घटनाओं में बढ़ोत्तरी - 2010 में रूस में गर्मी की लहरों का चलना और पाकिस्तान में बाढ़ का आना; संयुक्त राज्य अमरीका के टेक्सास में 2011 में सूखा, 2013 में अर्जेंटिना में गर्मी की लहरों का चलना, 2014 में कैलिफोर्निया में आग लगना, जॉर्डन, लेबनान, इजराइल और फिलिस्तीन के कुछ हिस्से में सूखा और नेपाल में आई बर्फ की आँधी जिसने 43 लोगों और 21 पर्वतारोहियों की जान ले ली।
- सितम्बर 2012 में आर्कटिक सागर में बर्फ बड़े पैमाने पर पिघल गई एवं इसका क्षेत्र एवं आयतन सबसे निम्न स्तर तक पंहुच गया।
- समुद्र तल से 2000 मीटर की गहराई से अधिक नीचे तक महासागर का पानी गर्म हो गया हैं।
- हिमालय के 800 ग्लेशियर्स, जिनकी निगरानी चीन, भारत और अन्य देशों में की जा रही हैं, में से 95 प्रतिशत 20,000 फीट की ऊपर की ऊँचाई पर पिघल रहे हैं।
- दुनिया के सबसे गरीब देशों एवं चीन में खाद्य उत्पादन पर चोट पड़ने की शुरुआत हो रही है।

7.3 अन्य प्रजातियों पर प्रभाव

भारत में - जैसे जैसे सागर का पानी अधिक गर्म हो गया है, वैसे वैसे मैकरल (आइला, सार्डिन और अन्य मछलियाँ पूर्वी और पश्चिमी, दोनों तटों पर उत्तर की ओर चली गईं है। पहले मैकरल मछली केरल के मालाबार में मिलती थी, अब वह 650 कि.मी. उत्तर में गुजरात तट के पानी में पायी जाती है। यह मछली बंगाल की खाड़ी में पहले आन्ध्र तक मिलती थीं परन्तु अब ओड़ीशा के पास पायी जाती है। इसी प्रकार का उत्तर की ओर स्थान परिवर्तन गंगा नदी में पायी जानेवाली मछलियों के साथ हो रहा है।

- उत्तर में भारत के पहाड़ पर अनेक प्रजातियों का और ऊंचाई की ओर विस्थापन - जैसे कि ओक वृक्ष, सेब के पेड़, पशु प्रजातियाँ, और सब्जियों के साथ हो रहा है।
- नाशकारी कीटों का अधिक फैलाव और वन क्षेत्रों में खरपतवारों की बढ़ोत्तरी।
- कई पौधों और पेड़ों में जल्दी और अनियमित फूल खिलना जैसे ओड़ीशा और कर्नाटक में आम, पूरे हिमालय पर रोडोडेन्ड्रॉन्स फूल और कश्मीर में केसर।
- समुद्र तल का पानी गर्म होने के कारण मछलियों के अण्डा देने का समय में परिवर्तन।
- सूखे के समय गायों एवं अन्य पशुधनों की विशाल पैमाने पर धीमी मौत।

दुनिया भर में असर

सैकड़ों प्रजातियों के बारे में प्रकाशित 800 से ज्यादा शोधपत्रों का सर्वेक्षण बताता है -

- ✓ प्रजातियाँ उत्तर दिशा की ओर यानी भूमध्य रेखा से दूर उत्तरी ध्रुव की तरफ सही तापमान की खोज में प्रस्थान कर रही हैं।
- ✓ पक्षियों का वार्षिक प्रवास समय से पहले होने लगा है।
- ✓ वातावरण जैसे जैसे गर्म हो रहा है, पहाड़ की प्रजातियाँ ऊपर जा रही हैं, लेकिन पहाड़ के और ऊपर जाने की जगह न होने के कारण अनुकूल तापमान के अभाव में कुछ पहाड़ी मेंढक की प्रजातियाँ विलुप्त हो गई हैं।
- ✓ पक्षीगण अपने अण्डे समय पूर्व दे रहे हैं।
- ✓ शिकारी प्रजातियों व उनके शिकार के जीवन वृत्त के बीच सामंजस्य में फर्क उत्पन्न हो गया है और परागण कीट व फूल वाले पौधों के बीच समय में व्यवधान आ गया है।
- ✓ गर्म हवाएँ, सूखा, सागर का अधिक अम्लीय होना, पहाडों की ढलान पर और ऊपर चढ़ने की जगह नहीं होना एवं ग्लोबल वार्मिंग के अन्य प्रभावों से

वर्तमान में पहचाने गए कुल प्रजातियों का एक बड़ा हिस्सा, वैज्ञानिकों के अनुसार 40-70 प्रतिशत, विलुप्ति के कगार पर हैं।

8. संशयी दृष्टिकोण

अभी कई लोग ऐसे हैं जो कहते है कि धरती गर्म हो रही है पर यह कोई खास बात नहीं है; इसके गर्म होने में मनुष्य जिम्मेदार नहीं है; पहले भी हुआ है तो कौन सी बड़ी बात है? ऊपर दिये गये अधिकारिक आंकड़ों से यह मालूम पड़ता है कि 1961-1990 के आधार वर्ष के बाद से भारत कितना गर्म हुआ है। आंकड़ों की बात छोड़ें, भारत या किसी अन्य देश के प्राकृतिक वातावरण में जो बदलाव हो रहा है, उसे केवल आँख खोलकर देखने से ही आसानी से मालूम हो सकता है कि ग्लोबल वार्मिंग का प्रभाव क्या है – पेड़ पौधों में जल्दी फूल आना, हिमनदों या ग्लैशियर्स का पिघलना, बसंत का जल्दी आगमन, सर्दियों का मौसम अपेक्षाकृत गर्म होना, छोटे द्वीपों का डूबना, आर्कटिक सागर की बर्फ का पिघलना आदि।

यह प्राकृतिक रूप से पहले भी हुआ है ऐसा कहना ठीक है परन्तु यहाँ बात उस गति की है जिस तेजी से वर्तमान में परिवर्तन हो रहे हैं। मानव सभ्यता को विकसित हुए 10,000 साल हो गये हैं और हम उन परिवर्तनों को बढ़ावा दे रहे हैं जो मानवीय अनुभव से पहले लाखों सालों में भी नहीं हुए हैं। पारिस्थितिक तंत्र परिवर्तनों को तब स्वीकार करने में सक्षम होता है जब कि ये परिवर्तन धीरे धीरे हों। अब ये परिवर्तन इतनी तेजी से हो रहे हैं कि पारिस्थिक तंत्र और विभिन्न प्रजातियाँ इसका मुकाबला नहीं कर पा रहे है।

कुछ लोग जलवायु परिवर्तन का वैज्ञानिक आधार पर सवाल खड़ा कर रहे हैं क्योंकि 1998 के बाद से कुछ वर्षों में धरती की सतह की गर्मी में बढ़त्तरी की दर कुछ समय के लिए कम हुई थी। ऐसा इसलिये हुआ था क्योंकि जो अधिक गर्मी को कैद की जा रही थी, वह समुद्र में 300 मीटर की गहराई के नीचे जा रही थी। सतही तापमान में बढ़ोत्तरी की दर में यह कमी अब शायद खत्म हो चुका है क्योंकि 1880 में जब से तापमान नापने के उपकरणों से तापमान रिकॉर्ड करना शुरू किया

गया है, तब से अब तक 2014 और 2015 सारे रेकॉर्ड तोड़तें हुए अभी तक के सबसे गर्म वर्ष रहे है। 2016 में इस बात की पुष्टि हो रही है क्योंकि हर महीना गर्मी के पिछला रेकॉर्ड तोड़ते हुए बड़े अंतर के साथ सबसे गर्म महीना बन रहा है। यदि हम वातावरण में और अधिक कार्बन डायऑक्साइड व ग्रीनहाउस गैसेस भेजेंगे, वे उतना ही अधिक गर्मी विकीरण को कैद करेगीं। ग्लोबल वार्मिंग का यह मूलभूत भौतिकशास्त्रीय आधार 120 वर्षों पहले से ही सुस्थापित है।

9. ग्लोबल वार्मिंग का मुकाबला करने की तात्कालिक आवश्यकता

हमें तत्काल कार्यवाही करने की आवश्यकता है ताकि इसका प्रभाव जितना हो चुका है उससे और ज्यादा खराब न हो। धरती जितनी भी और गर्म होगी, उतनी ही अधिक उत्तराखण्ड और चैन्नई में बाढ़ जैसी अति हानीकारक चरम प्राकृतिक घटनाएँ बार बार होंगी। जो प्राकृतिक आपदाएं 50 सालों मे एक बार आती थी वह अब हर 10 सालों में या फिर 5 सालों में हो सकती है। लोग मुश्किल से ही अचानक हुई एक आपदा की तकलीफ से उबर सकेंगे कि दूसरी आपदा अचानक उन्हें आघात पहुँचाने आ जायेगी।

यह तात्कालिक आवश्यकता किसी और कारणों से भी बनती हैं। कुछ पारिस्थितिक तंत्रों में, ग्लोबल वार्मिंग के कारण ऐसी प्रतिक्रिया उत्पन्न हो सकती है जिससे ग्लोबल वार्मिंग में और इजाफा हो। जैसे कि आर्कटिक सागर की बर्फ इतनी पिघल गई है कि उसका क्षेत्रफल मनुष्य द्वारा अभिलेखित इतिहास में सबसे कम हो गया है। आर्कटिक सागर को ''संसार का एयर कंडीशनर'' कहा जाता है। आर्कटिक सागर के बर्फ सूर्य के प्रकाश को परावर्तित करते हुए एक बड़े आइने की तरह काम करती है। कम बर्फ होने का अर्थ है कि धरती के जलवायु तंत्र के द्वारा अधिक गर्मी शोषित की जा रही है। दूसरी बात, आर्कटिक में ऊपर की जमी हुई सतह के नीचे अरबों टन मीथेन है। पिघलता हुआ बर्फ इस मीथेन को छोड़ेगा जिससे और अधिक गर्मी होगी। यह पिछले दस सालों से ही हो रहा है। कुछ और ऐसे जलवायु परिवर्तन के प्रभाव रेकॉर्ड किए जा चुके हैं; पानी का अधिक वाष्पीकरण जो अधिक गर्मी

रोकेगा, मिट्टी का अधिक गर्म होना जो कार्बन डायऑक्साइड को सोखने के बजाय उसका उत्सर्जन करेगा, आदि। अभी यह बहस चल रही है कि समुद्रों के द्वारा जितनी कार्बन डायऑक्साइड प्रतिवर्ष सोखी जाती रही है क्या उसमें कमी आई है। यदि ऐसा है तो अधिक कार्बन डायऑक्साइड वातावरण में बनी रहेगी व और गर्मी करेगी। यह अत्यंत खतरनाक होगा।

इन सब परिवर्तनों में से कुछ पहले से ही नियंत्रण से बाहर हो गए हैं। जैसे कि - जल्दी ही हमें गर्मी के मौसम में बर्फहीन आर्कटिक देखने को मिलेगा - यह रोका नहीं जा सकता है। ग्लोबल वार्मिंग से मुकाबला करने के लिये तत्काल कार्यवाही की आवश्यकता इस कारण से है कि ग्लोबल वार्मिंग के सारे प्रभाव जब एक साथ बहुत बड़े पैमाने पर होंगे तब मानव के लिये इन गम्भीर और खतरनाक समस्याओं से बचना असम्भव होगा।

10. सरकारें क्या कर रही है ?

10.1 भारत सरकार

इन समस्याओं की गम्भीरता एवं जटिलता की तुलना में भारत सरकार न तो पर्याप्त तत्परता दिखा रही है और न ही उपयुक्त कदम उठा रही है। भारत सरकार द्वारा राष्ट्र संघ को सन 2015 में दिया गया ग्लोबल वार्मिंग को कम करने के लिए उठाए जाने वाले कदमों एवं लक्ष्यों का एक दस्तावेज पेश किया गया है जिसे अंग्रेजी में इंटेंडेड नैशनली डिटर्मिंड कंट्रिब्युशन (आई. एन. डी. सी.) कहा जाता है। इस दस्तावेज में ग्लोबल वार्मिंग के शमन हेतु, जिसे अंग्रेजी में **मिटिगेशन** कहा जाता है, उत्सर्जन कम करने के लिए सरकार सन 2030 तक सन 2005 के स्तर से उत्सर्जन को 33-35 प्रतिशत कम करने का लक्ष्य तय किया है। परंतु इसमें पेंच यह है कि यह कार्बन के वास्तविक मात्रा में कमी न होकर सकल घरेलु उत्पाद के प्रति इकाई से हो रही उत्सर्जन के आनुपातिक मात्रा में कमी है। यानी क्योंकि भारत का सकल घरेलु उत्पाद 2030 तक वर्तमान से कई अधिक होनेवाला है इसलिए

आनुपातिक रूप से उस से उत्सर्जन अगर 33 प्रतिशत कम भी हो जाए फिर भी कार्बन डायऑक्साइड का उत्सर्जन की कुल वास्तविक मात्रा सम्भवतः दुगुणा होकर 500-600 करोड़ टन हो जाएगा जो कि निश्चित रूप से पृथ्वी की कार्बन डायऑक्साइड सोखने की क्षमता का एक बड़ा हिस्सा है। क्या यह विश्व स्तर पर व्याप्त इस पारिस्थितिक संकट, जो वर्तमान में ही भारत के लोगों और अन्य प्रजातियों को इतनी बुरी तरह से प्रभावित कर रहा है, का मुकाबला करने के लिए उचित एवं पर्याप्त सरकारी नीति है ?

महात्मा गांधी राष्ट्रीय रोजगार आश्वासन कार्यक्रम (मनरेगा) के तहत देश भर में हजारों कुंए, तालाब एवं अन्य जल एवं मृदा संरक्षण की संरचनाएं बनाई गई है ताकि जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम किया जा सके और लोगों को उसके मुकाबले के लिए तैयार किया जा सके, जिसे अंग्रेजी में **एडैप्टेशन** कहा जाता है। परंतु दुःख की बात यह है कि इस कार्यक्रम में वर्तमान में, जबकि पूरे देश भीषण सूखा से जूझ रहा है, अपर्याप्त निवेश किया जा रहा है एवं इसके संचालन में भी कुछ गम्भीर त्रुटियां है। अधिक गर्मी को सहने वाले संकरित एवं लवणरोधी फसलों पर भी शोध कुछ कृषि अनुसंधान केंद्रों में हो रहा है परंतु यह और जल्दी से व्यापक तौर पर छोटे किसानों तक पंहुचाने की जरुरत है। परंतु इसके विपरीत सरकारी कृषि विस्तार सेवाओं को कम किया जा रहा है क्योंकि नव-उदारवादी आर्थिक सिद्धांतों के चलते, जिसके तहत गरीबों के लिए सरकारी कार्यक्रमों को कम कर इन सेवाओं को निजी व्यापारियों को सौंप देने की सिफारिश की जाती है, सरकार के कल्याणकारी कार्यक्रमों पर खर्च को कम किया जा रहा है। सरकार आई.एन.डी.सी. दस्तावेज में दावा किया है कि सकल घरेलु उत्पाद (जी.डी.पी) का 2.8 प्रतिशत हिस्सा एडैप्टेशन के लिए निवेश किया जाएगा। परंतु इसमें से कुछ कार्यक्रम वर्तमान में चल रहे कार्यक्रमों का एडैप्टेशन के मद में पुनर्वर्गीकरण मात्र है एवं कोई नया निवेश नहीं है। न्यायपूर्ण आर्थिक एवं सामाजिक सरकारी नीतियां महत्वपूर्ण है देश के अधिकतर गरीब लोगों को जलवायु परिवर्तन का मुकाबला करने हेतु सक्षम बनाने के लिए। परंतु पिछले कुछ दशकों से एवं वर्तमान में, अधिकतर सरकारी नीतियां समाज को

विपरीत दिशा में धकेल रही है एवं गरीबों को सेवा प्रदाय की जिम्मेदारी निजी कम्पनियों को सौंपी जा रही है।

राष्ट्रीय जलवायु परिवर्तन कार्य योजना, जिसे अंग्रेजी में नैशनल ऐक्शन प्लान ऑन क्लाइमेट चेंज (एन.ए.पी.सी.सी) कहा जाता है, में आठ मिशन है - सौर, ऊर्जा कुशलता, जल, कृषि, ज्ञान आदि। परंतु सरकार का प्रयास रहा है कि इनमें निजी उद्योगों को अधिक मुनाफा कमाने का अवसर मिलें नाकि वास्तव में जलवायु परिवर्तन का मुकाबला किया जा सके। विशेष कर गरीब किसानों के हितों को दरकिनार कर दिया गया है। 22 राज्यों में राज्य स्तरीय कार्य योजनाएं तैयार की गई है परंतु इसके लिए स्थानीय लोग, व्यवसायिक संघ या अन्य संस्थानों से कोई चर्चाएं नहीं की गई है (मध्य प्रदेश की जलवायु कार्य योजना इस में एक सुखद व्यतिक्रम है)। सन 2013 में घटित उत्तराखंड की आपदा दिखाता है कि केंद्र और राज्य की सरकारें ऐसी आपदाओं के मुकाबला के लिए कितनी कम मुस्तैद है यद्यपि उत्तराखंड में एक जलवायु कार्य योजना पहले से बनी हुई थी।

आई.एन.डी.सी में कुछ स्वागतयोग्य कदम है - घरों के छतों पर फोटोवोल्टेइक सौर ऊर्जा का उत्पादन एवं उसे विद्युत ग्रिड से युक्त करने का विस्तार एवं मास ट्रांज़िट (जैसे कि मेट्रो) सार्वजनिक परिवहन का विस्तार। देश के सौर ऊर्जा उत्पादन क्षमता सन 2022 तक 100 गिगावाट हो जाने की उम्मीद है। परंतु एक मेगावाट सौर ऊर्जा के उत्पादन के लिए लगभग चार एकड़ भूमि की जरुरत पड़ती है। इसलिए अगर यह घरों के छतों पर ही अधिक उत्पादन नहीं होता है तो भूमि उपलब्धता की समस्या खड़ी हो जाएगी। आई.एन.डी.सी. दस्तावेज में 25 सौर उद्यान की बात की गई है जो कृषि भूमि का अधिग्रहण कर बनाया जाएगा। आई. एन.डी.सी एवं ऊर्जा नीति की यह एक प्रमुख समस्या है कि यह सभी स्त्रोतों से अंधाधुंध ऊर्जा उत्पादन की पैरवी करते है। नाभीकीय ऊर्जा (न्यूक्लियर), जिसे बेशर्मी से पर्यावरणीय रूप से अच्छी बताई गई है, का व्यापक विस्तार कर वर्तमान के ४ गिगावाट से 63 गिगावाट तक ले जाना है एवं बड़े जलविद्युत परियोजनाओं से उत्पादन को 100 गिगावाट तक। इसके अलावा कोयला से विद्युत उत्पादन तो है ही।

विद्युत उत्पादन में इस बेतहाशा वृद्धि अमीर वर्ग की बढ़ती मांगों को पूरी करने के लिए की जा रही है।

पिछले पच्चीस वर्षों के आर्थिक नीतियां - सस्ती हवाई यात्राएं, मोटरवाहनों के क्रय के लिए सुगम ऋण, शहरों में मॉलों का भरमार, आसानी से एयरकंडिशनर, फ्रिज, टेलिविज़न एवं अन्य विद्युतिकृत उपभोक्ता सामानों का प्राप्त होना, उत्खनन का क्षेत्र को विदेशी पूंजी के लिए खोल देना, अमीर वर्गों की कमाई पर कर में कमी लाना - यह सभी कार्बन उत्सर्जन को बढ़ावा देने के साथ ही अमीर एवं गरीब वर्गों के बीच आर्थिक असमानता को भी बढ़ाया है। इस दौरान सभी सरकारें लगातार विशाल गरीब वर्ग के कम खपत के पीछे छिप कर यह कहते रही है कि ''भारत की उत्सर्जन मात्रा कम है''। जबकि इस अवधि में देश में सभी स्त्रोतों से ऊर्जा की खपत में बेतहाशा वृद्धि को प्रोत्साहन दिया गया है अमीर वर्गों के उपभोग के लिए, जिससे कि कार्बन उत्सर्जन में लगातार बढ़ोत्तरी हुई है।

10.2 अन्य सरकारें

पिछले बीस वर्षों से दुनिया की तमाम सरकारें सालाना एक बैठक में मिलते है जिसे कांफ्रेंस ऑफ द पार्टिज़ (सीओपी या कोप) कहा जाता है। इस में उत्सर्जन में कमी लाने, एडेप्टेशन के तरीकें एवं विकासशील देशों को मिटिगेशन व एडेप्टेशन के लिए वित्तीय व तकनीकी मदद पंहुचाने पर विचार किया जाता है। दिसम्बर 2015 में फ्रांस के राजधानी पैरिस में 21वां सीओपी आयोजित किया गया था। सन 1997 में जापान के क्योटो शहर में आयोजित सीओपी में अधिकतर विकसित देश उनके सन 1990 में उत्सर्जन का स्तर को सन 2012 तक एक मामूली मात्रा से कम करने पर सहमत हुए थे। अलग-अलग देशों के लिए अलग-अलग उत्सर्जन स्तर निर्धारित किए गए थे एवं औसतन विश्वभर में सन 1990 से सन 2012 तक उत्सर्जन में 5.2 प्रतिशत कटौती करने का वादा किया गया था। यह वैज्ञानिकों द्वारा ग्लोबल वार्मिंग को काबू में लाने के लिए बताए गए स्तर से कम था। क्योंकि विकासशील देशों (चीन और भारत समेत) को इस समझौते को स्वीकृत करना नहीं

था एवं संयुक्त राज्य अमरीका ने इसे स्वीकार नहीं किया इसलिए दुनिया के तीन सबसे बड़े उत्सर्जक इस समझौते से बाहर रह गए। केवल यह ही नहीं कि क्योटो समझौते में उत्सर्जन में कटौती का स्तर बहुत कम था बल्कि यह व्यापारिक निगमों द्वारा मुनाफा कमाने का रास्ता भी प्रशस्त कर दिया। इस समझौते में दो व्यवस्थाओं की शुरुआत की गई - क्लीन डेवलपमेंट मेकानिज़्म (सीडीएम) यानि स्वच्छ विकास योजना और रिड्युसिंग एमिशन्स फ्रॉम डीफॉरेस्टेशन एंड फॉरेस्ट डिग्रेडेशन (रेड्ड) यानि निर्वनिकरण व वनों के क्षरण जनित उत्सर्जन को कम करना। कोई व्यापारिक इकाई, सामुदायिक संस्था, स्थानीय, प्रांतीय या राष्ट्रीय सरकार अगर उत्सर्जन को कम करने का कोई काम करता है तो उसे किसी नियामक संस्था द्वारा जांच के बाद कार्बन क्रेडिट यानि कार्बन उत्सर्जन में कमी लाने का प्रमाणपत्र दिया जाता है। जिन व्यापारिक निगमों या विकसित देश नियमानुसार अपना उत्सर्जन में कमी नहीं कर पा रहे है वे इन कार्बन क्रेडिटों को खरीदकर इस मायने में अपनी जिम्मेदारियां पूरी कर सकते है। इस प्रकार उत्सर्जन को जांचकर कार्बन क्रेडिट प्रदान करने एवं उसे खरीदी बिक्री करने की एक विशाल विश्व स्तरीय व्यापारिक व्यवस्था खड़ी की गई है जिसमें बड़े बड़े निगम मुनाफा कमाने का रास्ता खोजते है एवं वास्तव में इससे कोई उत्सर्जन में कमी नहीं होती है। अभी रेड्ड प्लस योजना में इस व्यवस्था को और विस्तृत कर प्रकृति द्वारा प्रदान किया जा रहा विभिन्न पारिस्थितिक सेवाओं पर भी कीमत लगाकर उनको बेचने का प्रावधान किया गया है। इसके पीछे सिद्धांत यह है कि खुले बाजार में खरीदी बिक्री से चीजों का उपभोग कुशल ढंग से होता है परंतु हकीकत यह है कि बाजार में हर वक्त कुछ व्यापारिक निगम हावी हो जाते है एवं वे अपने मुनाफा कमाने हेतु बाजार का संचालन गलत ढंग से करने लगते है। अतः आश्चर्य की बात नहीं कि पहले बताए गए पूंजीवाद के नियम के अनुसार मिटिगेशन एवं एडैप्टेशन में भी व्यापारिक कम्पनियों ने मुनाफा कमाने का रास्ता ढूंढ लिया है।

वर्तमान में दुनिया सीओपी द्वारा निर्धारित मात्रा में उत्सर्जन कम करने के समझौते के द्वितीय चरण में लटकी हुई है एवं तृतीय चरण की शुरुआत सन 2020 में होगी। इस तृतीय चरण के लिए प्रत्येक देश को अपना आइ.एन.डी.सी पैरिस में

आयोजित सी.ओ.पी से पहले पेश कर देना था एवं अधिकतर देश यह कर चुके है। चीन अपना उत्सर्जन की सघनता यानी प्रति इकाई सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी) में उत्सर्जन की मात्रा को 60-65 प्रतिशत कम करने का वादा किया है। संयूक्त राज्य अमरीका सन 2025 तक अपना कुल उत्सर्जन में, नाकि उत्सर्जन की सघनता में, 26-28 प्रतिशत कमी लाने का वादा किया है। परंतु इस प्रकार एक विश्वव्यापी एकीकृत प्रयास के बजाय टुकड़ों में उत्सर्जन कम करना वैज्ञानिक शोध से प्राप्त जानकारी को नज़र अंदाज़ करता है।

पैरिस में दिसम्बर 2015 को जो समझौता हुई है उस में ग्लोबल वार्मिंग को ''औद्योगीकरण के पूर्व के स्तर से 2 डिग्री सेंटिग्रेड बढ़ोत्तरी से कम रखने एवं उसे 1.5 डिग्री बढ़ोत्तरी तक ही सीमित रखने के प्रयास करने'' की बात की गई है। हालांकि यह उन लोगों के लिए एक जीत है जिन्होंने वर्षों से ग्लोबल वार्मिंग को 2 डिग्री से कम रखने के लिए बोलते आए है, बहरहाल, सभी देशों द्वारा कुल मिलाकर जो वर्तमान में उत्सर्जन कम करने के वादे किए गए है, अगर वह वादे पूरे पूरे निभाए भी जाए, फिरभी विश्व में औसतन तापमान में 3 डिग्री सेंटिग्रड इजाफा होगा जो कि सुरक्षित स्तर से बहुत अधिक है। यह एक व्यापक हादसा होगा क्योंकि मानवीय सभ्यता इतनी अधिक तापमान वृद्धि से होने वाले दुष्परिणामों से पूरी तरह अनभिज्ञ है।

कुछ सरकारें इसके अपवाद है। कुछ समुद्र के बीच टापुओं पर बने छोटे देश, जिन्हें समुद्र तल का ऊंचा हो जाने का सबसे ज़्यादा खतरा है, बड़े देशों पर दबाव डाल रहे है ग्लोबल वार्मिंग को नियंत्रित करने हेतु अधिक कारगर कदम उठाने के लिए। दक्षिण अमरीकी देश बोलिविया की सरकार, जिसकी जनसंख्या का अधिकांश आदिवासी मूल के है, जनता के दबाव के कारण सन 2010 में एक धरती माता के अधिकार कानून पारित किया है। इस कानून में यह स्वीकृत किया गया है कि सभी जीवों को अधिकार है जैसे कि - जीवन के मूलभूत इकाई या वंशणु (अंग्रजी मे जीन) के अंतरण के बिना जैव विविधता को बरकरार रखने का अधिकार, जीवन की निरंतरता को बनाए रखने के लिए पानी का अधिकार व मानवों द्वारा नाश किए गए

पारिस्थितिक तंत्रों को सुधारने का अधिकार। दक्षिण अमरीका के ही एक और देश इक्वेडोर ने अपने संविधान में प्रकृति को भी मानवों की तरह अधिकार प्रदान किया है।

परतुं अधिकतर सरकारें अपने राष्ट्रीय अमीर वर्ग के ही प्रतिनिधित्व करते है। यह सरकारें, वर्ग शोषण पर आधारित पूंजीवादी व्यवस्था के जिन ढांचागत कारणों से उत्सर्जन में वृद्धि हो रही है, उन पर सवाल खड़े करने में अक्षम है। यह उम्मीद करना, कि अमीर वर्ग द्वारा नियंत्रित यह सरकारें, नीचे से जन संधर्ष से उत्पन्न कोई दबाव के बिना ही ग्लोबल वार्मिंग के शमन के लिए कारगर एवं जन पक्षीय कदम उठाएंगें, सरासर गलत लोगों पर भरोसा करने जैसा होगा।

11. हमें क्या करना चाहिए?

तत्परता के साथ हमें एक साथ मिलकर उपर्युक्त अलग अलग क्षेत्रों में अलग अलग स्तरों पर कार्य करना होगा। ग्लोबल वार्मिग हमारी जिंदगी के इतने पहलुओं को छूता है कि जो भी हम अर्थपूर्ण सोचते है वह करने के लिए हमारे पास बहुत मौका है।

एक सोच यह भी है, जिसका सार में विचारधारागत रूढ़ी है, कि प्रौद्योगिकी (टेकनोलॉजी) से इस समस्या का समाधान होगा। परंतु यह न सिर्फ अव्यवहारिक है बल्कि बेवकूफी भी है क्योंकि यह विचार के कारण अधिकतर लोगों को ऐसा लगता है कि ग्लोबल वार्मिंग के शमन के लिए सामाजिक व राजनीतिक कदम उठाने की कोई ज़रूरत नहीं है। प्रौद्योगिकी की भी भूमिका है जैसे कि हमें छतों पर सौर्य ऊर्जा का उत्पादन को बढ़ाना है। परंतु हमें समाधान के लिए जन पक्षीय सामाजिक एवं राजनीतिक बदलाव की आवश्यकता अधिक है जिसके फलस्वरूप समुचित प्रौद्योगिकी का उपयोग हो सकेगा नाकि केवल प्रौद्योगिकी के ही भरोसे हम रह जाए।

इस पुस्तिका में इसके पश्चात कुछ कदम सुझाए गए है, जो जाहिर है कि सीमित है और समय के साथ यह और विस्तृत होंगें। ग्लोबल वार्मिंग का गहराते हुए

संकट को देखते हुए हमारे पास समय नहीं है एवं हमें इसके शमन के लिए तत्काल कार्यवाही करनी होगी।

11.1 व्यक्तिगत प्रयास

बहुत सारे युवाओं के दिमाग पर बाजार हावी है। यह बाजारी नियंत्रण न केवल गैर ज़रूरी उपभोग में दिखता है - हमारी पहचान आजकल तरह तरह के यंत्रों के उपयोग से बनने लगी है - बल्कि अन्य लोगों एवं प्रकृति के साथ हमारे रिश्तें भी इसके द्वारा प्रभावित हुए है। इसलिए खोती जा रही मन की स्वतंत्रता को वापस पाने का संघर्ष एक आवश्यक प्रथम कदम है एवं यह एक निरंतर युद्ध की तरह है।

जहां तक व्यवहारिक व्यक्तिगत कार्यों का सवाल है तो हमें हमारा सबसे अधिक कार्बन उत्सर्जन करने वाली गतिविधि को चिह्नित कर उसे कम करना चाहिए। अमीर वर्ग के लिए यह है हवाई यात्राएं करना। इसके अलावा अमीर वर्ग के व्यक्ति को अधिक ऊर्जा का खपत करने वाले यंत्रों जैसे कि ए सी का उपयोग कम करना चाहिए। साथ ही ऐसे व्यक्ति को बसों या अन्य सार्वजनिक यातायात प्रणालि से यात्रा करने, सायकल चलाने या पैदल चलने जैसे कदम और अधिक उठाने चाहिए। यह व्यक्तिगत जीवनयापन में बदलाव लाने के निर्णय इसके लिए अनुकूल सार्वजनिक नीतियों एवं व्यवस्थाओं से जुड़ें हुए है जैसे कि सायकल के लिए अलग रास्ता होना एवं महिला सुरक्षा युक्त बस सेवा होना आदि।

जिनके पास पर्याप्त साधन है वे पारिवारिक स्तर पर छतों पर सौर्य ऊर्जा के पैनेल एवं वर्षाजल को सहेजने की प्रणाली लगा सकते है। दिल्ली में छतों पर लगाए गए सौर प्रणालियों को विद्युत ग्रिड के साथ जोड़ने की व्यवस्था हाल में शुरू की गई है। शहरों के घरों के बरामदों या छतों पर सब्ज़ी उगाने न केवल सेहत के लिए अच्छा है बल्कि इससे खेतों से घरों तक सब्जी पंहुचाने में होनेवाले कार्बन उत्सर्जन में भी बचत होती है। शहरी खेती दिल्ली, बेंगालुरु एवं कुछ अन्य शहरों में की जा

रही है परंतु यह अमीर परिवारों तक ही सीमित है। अतलांतिक महासागर में स्थित टापू देश क्युबा के शहरों में यह पंच्चीस वर्षों से हो रही है।

एक सोच यह भी है कि क्योंकि ग्लोबल वार्मिंग एक विशाल तंत्रगत समस्या है इसलिए इसके समाधान के लिए व्यक्तिगत प्रयास करना व्यर्थ है। परंतु यह सही नहीं है। व्यक्तिगत प्रयासों से हम इस समस्या से जूझने की हिम्मत बनाएं रखते है। इससे हमें इस विषय पर दोस्तों और रिश्तेदारों से वार्तालाप करने और कभी कभी बहस करने में मदद मिलती है। इसके अलावा यह वांछनीय है कि हमारे विचार एवं हमारी जीवनशैली में सामंजस्य हो।

11.2 सामूहिक प्रयास

यद्यपि व्यक्तिगत प्रयास आवश्यक है, पर इनकी उपयोगिता को अभिजात वर्ग एवं प्रचार माध्यमों द्वारा अत्यधिक तुल दिया जाता है। वे हमें पृथ्वी दिवस (अर्थ डे) पर एक घंटे के लिए बत्ती बुझाने के लिए कहते है या हमारे रोशनी के बल्बों को बदलकर कम ऊर्जा खपत वाले एल.ई.डी बल्ब लगाने के लिए बोलते है और यह सब करके हमें लगता है कि ग्लोबल वार्मिंग को रोकने के लिए हमने काफी कुछ कर लिया है। इस प्रकार के सहती काम करने के बाद हम ग्लोबल वार्मिंग एवं अन्य पारिस्थितिक समस्याओं के लिए उत्तरदायी ढांचागत कारकों के बारे में प्रश्न करने से कन्नी काटने लगते है। दूरगामी सामाजिक एवं राजनीतिक परिवर्तन आम तौर पर तब ही होता है जब अनेक लोग सामूहिक रूप से यह महसूस करते है कि तंत्र में ही कुछ बुनियादी खामी है जिसे सुधारने की जरूरत है और इसके लिए एक साथ आकर कुछ सामूहिक प्रयास करते है। ऐसे सामूहिक प्रयासों के लिए निम्न कदम उठाए जा सकते है -

1. **जलवायु परिवर्तन पर एक जन पक्षीय सोच और समझ** को और ठोस बनाने के लिए शहरी एवं ग्रामीण इलाकों में अधिक से अधिक लोगों के साथ संवाद स्थापित कर यह जानने की जरूरत हैं कि किस प्रकार से जलवायु परिवर्तन के कारण उनकी ज़िंदगी प्रभावित हो रहा है, इसके बारे में वह क्या सोचते है और इसके लिए वह

क्या कर रहे है या नहीं कर रहे है। स्थानीय किसान एवं अन्य समुदाय विभिन्न तरीकों से इस परिवर्तन का मुकाबला कर रहे हैः फसलों के मिश्रण को बदल रहे है, फसल चक्र को बदल रहे है, पारम्परिक देसी बीजों का उपयोग की ओर लौट रहे है, खेतों में छोटे तालाब खोद रहे है एवं पुराने तालाबों एवं अन्य जलाशयों को पुनर्जीवित कर रहे है। जलवायु परिवर्तन का मुकाबला करने में कौन से कार्य सफल होते है यह जानना महत्वपूर्ण है क्योंकि एक जगह पर सफल हुए तरीके उसी परिस्थितियों के अन्य जगहों में भी सफलता से दुहराए जा सकते है।

यह काम छात्रों और युवाओं के समूह और जन संगठनों द्वारा किया जा सकता है। शहरी गरीबों पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव में उनके निवास स्थल में पानी भर जाना, पानी की कमी होना, अत्यधिक गर्मी होना और कृषि पर प्रभाव के कारण खाद्य की कीमतों में वृद्धि होना शामिल है। इन सब घटनाओं की जन पक्षीय जांच करने से हमें जलवायु परिवर्तन का मुद्दा को वर्ग शोषण के परिप्रेक्ष्य से समझने और हमारें तरफ लगातार फेंका जा रहा अन्य असंतोषजनक परिप्रेक्ष्यों का पर्दाफाश करने में मदद मिलती है। जलवायु परिवर्तन पर एक लैंगिक यानी महिला पक्षीय परिप्रेक्ष्य बहुत महत्वपूर्ण है जिसका निर्माण के लिए भारत में अभी तक खास प्रयास हुआ नहीं है। इसके लिए भी छात्रों को महिलाओं के साथ काम करने या उन्हें संगठित करने वाले समूहों के साथ सर्म्पक साधना चाहिए। ऐसा करने से जलवायु परिवर्तन का मुद्दा को अमूर्त विज्ञान के दायरे से बाहर निकालकर लोगों के जीवन एवं आजीविकाओं के बीच स्थानांतरित कर दिया जाएगा जहां उसे होनी चाहिए।

2. **आप के महाविद्यालय में**ः अगर आप के महाविद्यालय में कोई छात्र समूह या संघ नहीं है तो ऐसा समूह या संघ का गठन कर लेना चाहिए। यह एक पर्यावरण संरक्षण समूह, प्रकृति संरक्षण समूह या छात्र समूह हो सकता है। इसकी शुरुआत दोस्तों या दिलचस्पी रखने वाले छात्रों से चर्चा के माध्यम से की जा सकती है। छात्र समूह बनाने के मुद्दे पर विचार विमर्ष के लिए एक बैठक बुलाई जा सकती है एवं इसका प्रचार व्हाट्सैप समूह बनाकर एवं पोस्टर लेखन के माध्यम से किया जा

सकता है। फिल्मों का प्रदर्शन एवं उस पर चर्चा से यह कार्य प्रारम्भ किया जा सकता है एवं इसमें सहानुभुति रखने वाले अध्यापकों की सहायता ली जा सकती है।

छोटे परंतु सटीक कार्यों से इस प्रक्रिया को शुरू किया जा सकता है। उदाहरण के लिए छात्र अपने महाविद्यालय के छत पर उपलब्ध खाली जगहों को चिह्नित कर यह आकलन कर सकते है कि वहां कितने सौर ऊर्जा पैनेल लगाए जा सकते है। इसके बाद संबंधित विभागीय कार्यालय से सम्पर्क साधकर या नवीन व नवीकरणीय ऊर्जा मंत्रालय के वेबसाईट पर जाकर सौर ऊर्जा प्रणाली स्थापित करने के बारे में कार्यवाही कर सकते है (नवीकरणीय ऊर्जा वह ऊर्जा है जिसका उपयोग बार बार किया जा सकता है उसके भंडार में कमी किए बिना जैसे कि सौर, वायु गोबर, आदि)। इसी प्रकार महाविद्यालय में वर्षा जल का संग्रहण के भी कार्य किए जा सकते है। इन परियोजनाओं पर कार्य करने हेतु छात्रों को महाविद्यालय प्रशासन पर दबाव लाना होगा एवं इसलिए छात्रों का साथ आना आवश्यक है। एक बार आप के समूह सक्रिय हो जाता है तो आप अन्य महाविद्यालयों के छात्रों से सम्पक्र कर वहां भी ऐसे समूह बनाने के लिए प्रयास कर सकते है।

3. **आपके शहर या समुदाय में**: कोई भी शहर में, जहां हम रहते है या अध्ययन के लिए निवास करते है, ग्लोबल वार्मिंग से मुकाबला करने के लिए कुछ न कुछ हो रहा है या किया जा सकता है। उदाहरण के लिए दिल्ली में छतों पर सौर ऊर्जा प्रणालियां स्थापित करने के लिए एक अभियान चलाया गया था। अन्य संगठन यह मांग कर रहे है कि दिल्ली की जन परिवहन नीति को आम आदमी पार्टी का ऑड-इवन परियोजना से और विस्तृत किया जाए जैसे कि बस रैपिड ट्रांस्पोर्ट प्रणाली को, जिसमें कि अधिकतर लोगों के जल्द से जल्द सफर के लिए सड़कों का एक तिहाई हिस्सा सार्वजनिक बसों एवं एम्बुलेंसों के लिए सुरक्षित कर दिया जाता है, दिल्ली के अधिक हिस्सों में लागू किया जाए। वे यह भी मांग कर रहे है कि यातायात प्रणाली अधिक उत्सर्जन करने वाले चार पहिया निजी वाहन केंद्रित न होकर बस यात्री, सायकल चालक एवं पैदल चलने वालों के हितों पर ज्यादा ध्यान दें। कई शहर, जिनमें देहरादून जैसे प्रादेशिक राजधानी भी है, केवल निजी चालको द्वारा

चलाए जा रहे छोटे चार पहिया एवं तीन पहिया वाहनों पर यातायात के लिए निर्भर है। कुछ शहरों में मेट्रो रेल विकसित किया जा रहा है पर इनके किराया इतना अधिक है कि कामकाजी गरीब लोग इसका उपयोग नहीं कर सकते है। इसलिए इनके लिए भी मुम्बई या कोलकाता जैसे शहरों में स्थानीय पैसेंजर रेल सेवा के यात्रियों के लिए जैसे ही सस्ती यातायात पास का प्रावधान होना चाहिए।

जलवायु परिवर्तन के परिप्रेक्ष्य में सभी शहरों में जल प्रबंधन एक प्रमुख विषय है। चार स्तरों पर इसके लिए कार्य किया जा सकता है। पहला, भूजल स्तर को वर्धित करने के लिए सार्वजनिक स्थलों और सड़कों पर वर्षा जल की पुनर्भरण संरचनाएं के निर्माण हेतु स्थानीय प्रशासन पर दबाव डाला जा सकता है। दूसरा, बावड़ियों, झीलों, तालाबों एवं नदी नालों जैसे पुराने जलाशयों को साफ कर उनका संरक्षण किया जा सकता है। इसके लिए पहले हमें यह पता करना होगा कि वह कहां स्थित है। ऐसे जलाशयों को खोजने का काम छात्रों एवं दिलचस्पी रखने वाले अध्यापको द्वारा किया जा सकता है। तीसरा, यह मांग करनी चाहिए कि शहर के सभी नागरिकों को एक स्वस्थ जीवन के लिए आवश्यक पानी उपलब्ध कराना चाहिए एवं इसके लिए जल वितरण प्रणाली को अधिक न्यायोचित बनाना होगा। चौथा, जलभूमि, नदी नालों के किनारों एवं जलाशयों को भरकर उस पर अतिक्रमण कर निर्माण कार्य पर रोक लगाना होगा ताकि दिसम्बर 2015 में चेन्नई में आए बाढ़ जैसे विनाशकारी आपदाएं न आए। इस प्रकार पारम्परिक जलाशयों को पुनर्जीवित कर, वर्तमान जलाशयों को साफ कर, नए जल संरक्षण संरचनाओं का निर्माण कर एवं जल वितरण प्रणालियों को नए सिरे से न्यायोचित ढंग से बिछाकर अनेक लाभ प्राप्त किया जा सकता है - भूजल की उपलब्धता में सुधार, जल का अपचय में कमी, ऊर्जा की खपत में कमी एवं सभी के लिए जल की उपलब्धता।

4. **नवीकरणीय एवं कम हानीकारक विकेंद्रित ऊर्जा का चयनः** परमाणु ऊर्जा, जिसे भारत सरकार एवं विदेश के कुछ विशेषज्ञ जलवायु परिवर्तन समस्या के समाधान के रूप में प्रस्तुत कर रहे है, वास्तव में बहुत खतरनाक है। कोयला सबसे अधिक कार्बन उत्सर्जन करने वाला एवं जानलेवा जहरीले पदार्थों को उत्सर्जित करने

वाला इंधन है। बड़े जल विद्युत परियोजनाएं भी उनके जलाशयों से अधिक कार्बन उत्सर्जन करते है एवं इनके खिलाफ भी लोग आंदोलन कर रहे है। अगर हम मौजूदा सभी प्रमुख ऊर्जा स्त्रोतों का विरोध करते है तो हम किस ऊर्जा स्त्रोत के पक्ष में है?

हम एकाएक कोयला या अन्य खनिज इंधनों का उपयोग बंद नहीं कर सकते है। परंतु हमें और तेज़ गति से साफसूथरी ऊर्जा स्त्रोतों का उपयोग को बढ़ाना होगा। भारत एवं अन्य जगहों पर कुछ संगठन एवं समूह गम्भीरता के साथ खनिज इंधन के विकल्पों के उपयोग पर चर्चा करने लगे है। सौर एवं वायु ऊर्जा ऐसे प्रमुख वैकल्पिक स्त्रोत है। सौर ऊर्जा खाना बनाने, पानी गरम करने एवं अन्य गरमी पैदा करके किए जाने वाले कार्य में उपयोग के लिए आदर्श है। इसके अलावा विकेंद्रित विद्युत उत्पादन के लिए भी यह उत्तम साधन है एवं इसका इस्तेमाल ग्रामीण क्षेत्रों के साथ साथ घनी आबादी वाले शहरी क्षेत्रों में भी होनी चाहिए क्योंकि यहीं से सबसे ज्यादा कार्बन उत्सर्जन होता है।

परंतु यह तब ही हो पाएगा जब सरकारें जन दबाव के कारण कोयला एवं अन्य जमीन के नीचे से निकाले गए इंधनों का उपयोग को अनुदान देकर प्रोत्साहित करने के बजाय सौर और वायु ऊर्जा को पुरजोर समर्थन देने लगेगी। इस मायने में जर्मनी का उदाहरण उल्लेखनीय है - पिछले एक दशक में वहां सौर ऊर्जा का उत्पादन सैंकड़ो मेगावाट से बढ़कर 30000 मेगावाट हो गया है। यह इसलिए हो पाया है क्योंकि वहां के सरकार सौर ऊर्जा के प्रसार हेतु प्रोत्साहन नीति बनाई है। वहां के एक विशाल पर्यावरणीय हरित आंदोलन द्वारा, जिसमें मजदूर, छात्र व नागरिक शामिल है, परमाणु ऊर्जा का तीव्र विरोध एवं इसके बजाय नवीकरणीय ऊर्जा का उपयोग के पक्ष में मांग के कारण जर्मनी में ऐसा हो पाया है। जर्मनी के नवीकरणीय ऊर्जा उत्पादन के आधा हिस्सा नागरिक समूहों, किसानों एवे नई ऊर्जा सहकारी समितियों द्वारा विकेंद्रित तरीकों से किया जाता है।

नवीकरणीय ऊर्जा के भी सामाजिक कीमतें होती है। विशाल केंद्रिकृत सौर ऊर्जा उद्यान बड़े पैमाने पर कृषि भूमि का अधिग्रहण कर स्थापित किए जाते है।

इसलिए कोयला के एवज में तुलनात्मक रूप से सामाजिक तौर पर कम हानीकारक नवीकरणीय ऊर्जा स्त्रोतों के उपयोग की ओर जाने के लिए हमें इस ऊर्जा से सर्वप्रथम व्यापक जनता की मूलभूत ऊर्जा मांगों को पूरी करनी होगी और अमीर वर्गों द्वारा किया जा रहा अनावश्यक ऊर्जा उपयोग पर लगाम लगाना होगा। अन्यथा हम सभी स्त्रोतों से और अधिक ऊर्जा हथियाने के होड़ में फंस जाएंगें, जो लगता है कि हमारी वर्तमान नीति है एवं यह अधिकतर जनता एवं अन्य प्रजातियों के लिए हानीकारक है।

5. **विस्थापन के विरुद्ध संघर्ष :** भारत भर में वन, भूमि, नदियां एवं समुद्र जैसे सामूहिक सम्पदाओं पर स्थानीय समुदायों के नियंत्रण स्थापित करने एवं विस्थापन के विरोध में संघर्ष तेज हो गए है। यह संघर्ष उत्खनन परियोजनाएं, कोयला आधारित विद्युत संयंत्र, एलुमिनियम संयंत्र, परमाणु ऊर्जा संयंत्र एवं हाल ही में स्थापित हुए मुम्बई दिल्ली औद्योगिक गलियारा जैसे 18 वृहत औद्योगिक क्षेत्रों के विरुद्ध जारी है। विरोध करने वाले स्थानीय निवासी अपनी आजीविकाएं, संसाधनों एवं कृषिभूमि पर नियंत्रण खोने एवं कभी कभी इन परियोजनाओं के कारण होने वाले स्वास्थ्य समस्याओं से खफा है। यद्यपि उनके इस विरोध के पीछे तात्कालिक रूप से उनके मन में जलवायु परिवर्तन नहीं है परंतु यह जलवायु परिवर्तन से जुड़ा हुआ है। यह संघर्ष ऊर्जा स्त्रोतों के चयन के बारे में है - कोयला उत्खनन एवं कोयला आधारित वृहत विद्युत संयंत्रों के विरुद्ध संघर्ष कई जगहों पर फूट पड़ा है जैसे कि महान, चंद्रपुर, सोमपेटा एवं काकरापल्ली जहां वृहद विद्युत परियोजनाओं का निर्माण हो रहा है। कुडंकुलम एवं जैतापुर में परमाणु ऊर्जा संयंत्रों और नर्मदा घाटी एवं पोलावरम में वृहत जलविद्युत परियोजना के विरुद्ध संघर्ष चल रहे है। उत्तर पश्चिम में हिमाचल प्रदेश से लेकर उत्तरपूर्व में अरुणाचल प्रदेश तक हिमालय में बड़े बांधों के खिलाफ आंदोलन चल रहे है।

जलभूमि और वनों को संरक्षित कर, जैसे कि स्थानीय लोगों के संघर्ष से ओड़िशा राज्य के जगतसिंहपुर एवं नियमगिरी में क्रमशः पॉस्को इस्पात परियोजना एवं

वेदांत बॉक्साइट परियोजना को बरखास्त कराकर किया गया है, न केवल महत्वपूर्ण पारिस्थितिक तंत्रों को बचाया गया है बल्कि कार्बन को शोषित कर उत्सर्जन का दुष्प्रभाव को कम करने वाले प्राकृतिक प्रणालियों को भी बचाया गया है। न्यायपूर्ण एवं समुचित विकास प्रणालियां क्या होनी चाहिए, यह सवाल इन जन संघर्षों के केंद्र में है एवं यह ही सवाल ग्लोबल वार्मिंग के विरुद्ध जारी संघर्षों में भी अहम है।

समय के साथ छात्र एवं युवा इन संघर्षों के साथ विभिन्न तरीकों से जुड़े है - इनसे जुड़कर सक्रिय भागीदारी निभाएं है, कुछ अन्य लोग प्रगतिशील संगठनों एवं दलों से जुड़कर इनका समर्थन किए है, कुछ लोगों ने इन संघर्षों के समर्थन के लिए समूह बनाएं हैं एवं अन्य लोगों ने संघर्ष स्थलों का दौरा कर लागों का हौसला अफज़ाई किए है एवं रिपोर्ट प्रकाशित किए है या अन्य तरीकों से इनके समर्थन में अभियान चलाएं हैं।

दुनिया के अन्य जगहों पर भी इस प्रकार के आंदोलन जारी है जैसे कि जीवाश्मिक इंधनों का उत्खनन या उनका दहन के खिलाफ संघर्ष, विशेष कर कोयला एवं खनीज तेल के उत्खनन, बीते दो वर्षों में तेज हुए है। इनमें उत्तरी अमरीका में कीस्टोन पाइपलाइन एवं ब्रिटेन में कोयला खदानों के विरुद्ध सफल प्रतिरोध शामिल है। वर्तमान में ब्रेक फ्री फ्रॉम फॉसिल फ्यूल कैम्पैन यानी जीवाश्मिक इंधन से मुक्ति अभियान के अंतर्गत एक साथ कई देशों में कोयला खदानों और खनीज तेल उत्पादन क्षेत्रों और यह करने वाले बड़े कम्पनियों के कार्यालयों के सामने प्रदर्शन किए जा रहे है। इसका विवरण www.350.org नामक वेबसाइट में मिलेगा।

विगत कुछ वर्षों में युवाओं द्वारा अभियान चलाए गए है वित्तीय संस्थाओं को जीवाश्मिक इंधन के विकास से समर्थन वापस लेने के लिए। इस के फलस्वरूप ५०० से भी ज्यादा संस्थाएं जैसे पेंशन फंड, सरकारी संस्थाएं, विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय व धनवान न्यासें, जिनकी वित्तीय सम्पदा 2300 खरब रुपए है, जीवाश्मिक इंधन से अपना निवेश वापस लेने की प्रतिबद्धता जाहिर किए है। इस

सूची में करीब 30 शैक्षणिक संस्थाएं शामिल है जैसे लंडन स्कूल ऑफ इकनॉमिक्स, स्कूल ऑफ ओरियेंटल एंड एफ्रिकन स्टडिज़ एवं ऑक्सफर्ड विश्वविद्यालय।

6. **पूंजीवाद को चुनौती** : जलवायु परिवर्तन से मुकाबला करने के लिए जारी जन पक्षीय आंदोलनों ने जीवाश्मिक इंधन उत्पादन करने वाले व्यापारिक निगमों को निशाना बनाकर शत्रु का पहचान अवश्य किया है। परंतु जिसकी जरूरत है वह पूंजीवाद की मुनाफा कमाने एवं धन एकत्रित करने की आधारभूत प्रवृत्ति को चुनौती पंहुचाना है। यह धन एकत्रित करने की प्रक्रिया भयानक है – चाहे वह उपनिवेशवाद का इतिहास, संसाधनों का हिंसक दोहन, संसाधनों पर कब्जा करने के लिए युद्ध, मजदूरों का शोषण या दमनात्मक कानून हो, इन सभी में पूंजीवाद का हिंसक रूप बखूबी झलकता है। अतः ग्लोबल वार्मिंग का मुकाबला करने के लिए पूजीवादी व्यवस्था को ही चुनौती पंहुचानी होगी। समस्या यह है कि हालांकि पूंजीवाद के राजनीतिक विकल्प मौजूद है, वैश्विक पैमाने पर इसके आर्थिक विकल्प का निर्माण करना आसान नहीं है।

ग्लोबल वार्मिंग एवं अन्य पारिस्थितिक संकटों के कारण कई ऐसे प्रश्नों का महत्व बढ़ गया है जो कुछ समय से उठाए जा रहे थे – क्या ऊंचे आर्थिक वृद्धि दर की जरूरत है? यह आर्थिक वृद्धि कैसे हासिल होता है? क्या इससे अधिकतर लोगों को अच्छे काम, बड़े पैमाने पर रोजगार एवं अच्छे ढंग से जीने के लिए वेतन मिलता है? इस ''विकास'' का लाभ वास्तव में कितने लोगों को मिलता है? हकीकत तो यह है कि पूंजीवादी विकास एवं आर्थिक वृद्धि दर लोगों को और ज्यादा काम करवाकर एवं प्रकृति का बेतहाशा दोहन कर हासिल होता है। इससे भारत में पिछले बीस वर्षों में अधिकतर अस्थायी, असुरक्षित, तनावपूर्ण एवं कम वेतन वाले रोजगार का ही सृजन हुआ है एवं यह घटिया स्तर के रोजगार के अवसर भी वर्तमान में कम होते जा रहे है। आंख मीचकर यह पूंजीवादी आर्थिक वृद्धि का मंत्र को स्वीकार करने के बजाय मैं एक अधिक न्यायपूर्ण विकास प्रणालि की पैरवी करुंगा जिसमें अधिकतर लोगों की आवश्यकतानुसार उन्हें आधारभूत वस्तुएं एवं सेवाएं प्रदान किए जाएंगें जिससे कि वे अपने रोज़मर्रा के जीवन के वर्तमान निम्न स्तर को सुधार सके।

जैसे जैसे लोगों की जिंदगी का स्तर में सुधार आएगा वैसे वैसे अपने आप कम वृद्धि दर वाला न्यायपूर्ण विकास स्थापित होगा।

पारिस्थितिक चिंताएं हमारी राजनीति के अभिन्न अंग होनी चाहिए। बीसवी सदी की वामपंथी राजनीति की बहुत सारी आलोचना की गई है - उसमें लोकतंत्र का अभाव, उसके द्वारा प्रौद्योगिकी को दी गई प्राथमिकता, उसके व्यापक औद्योगिक पैमाना और उसके कारण हुए पारिस्थितिक विनाश जिसमें वामपंथी पूंजीवाद और प्रकृति के बीच के संबंध का अनुकरण किए है। प्रगतिशील राजनीति भविष्य में वामपंथी राजनीति की इन खामियों को नज़र अंदाज़ नही कर सकती है एवं इसलिए एक लोकतांत्रिक एवं पारिस्थितिक रूप से स्थायी राजनीति स्थापित करने का प्रयास करना होगा।

7. **न्यायोचित बर्तावः** ग्लोबल वार्मिंग के मुकाबला के लिए अपनाए जाने वाले उपायों के केंद्र में न्यायोचित बर्ताव है। इसके कम से कम चार पहलु है और सम्भवतः और भी हो सकते है -

क) लोगों के बीच संसाधनों का न्यायोचित बंटवाराः यह विकास की प्रणालि से जुड़ा हुआ है। अधिकांश लोगों को सही जिंदगी जीने के लिए पर्याप्त संसाधन मिले इसके लिए छोटे पैमाने पर कृषि को पुनर्जीवित करना होगा, भूमि का न्यायोचित बंटवारा करना होगा एवं उस पर महिलाओं को नियंत्रण देना होगा। भारत जैसे जटिल व विविध समाज व्यवस्था में समुदायों, जातियों एवं लिंगों के बीच अधिक समानता अनिवार्य है। अधिकांश लोगों की आधारभूत जरूरतों को प्राथमिकता देनी होगी, अमीर वर्ग के लोगों को कम उपभोग करने के लिए उपयुक्त कानून एवं नीतियां पारित कर मजबूर करना होगा, अधिक आय एवं धन एकत्रण पर रोक लगानी होगी एवं सामूहिक सामाजिक प्राथमिकताओं को गरीबों के पक्ष में बदलनी होगी।

ख) जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से मुकाबला के लिए न्यायोचित प्रस्तुतिः मुकाबला केवल आपातकालीन घटना के प्रतिक्रिया स्वरूप ही नहीं होनी चाहिए बल्कि इसके लिए पहले से ही तैयारी करनी होगी एवं क्योंकि गरीब वर्ग के ऊपर ही

ऐसी आपात घटनाओं के दुष्प्रभाव सबसे अधिक होते है इसलिए उनके लिए पर्याप्त प्रावधान करनी होगी ताकि वह ग्लोबल वार्मिंग से कम प्रभावित हो एवं आपात घटनाओं के पश्चात जल्द से जल्द अपनी आजीविकाओं को पुनर्स्थापित कर सकें।

ग) पीढ़ियों के बीच न्यायोचित बर्तावः हम कितने आगे तक सोचने को तैयार है? क्या हम इस बात को मानने के लिए तैयार है कि केवल हमारी पीढ़ी को ही उपभोग का अधिकार नहीं है बल्कि भविष्य में आनेवाले पीढ़ियों को भी सामूहिक संसाधनों पर हमारे बराबर के हक है? यह भी स्थायी विकास का एक अंग है।

घ) अन्य प्रजातियों के प्रति न्यायोचित बर्तावः हमें ऐसे दृष्टिकोण से हटना होगा जो केवल मानवों और उनके बीच के अंतर्विरोधों पर केंद्रित है। हमें मानना होगा कि अन्य प्रजातियों को भी सामूहिक संसाधनों, ऊर्जा, नदियों एवं वनों पर उतना ही हक है जैसे कि हमें है। हमें समझना होगा कि हम पृथ्वी पर अब तक के खोजे गए एवं जीवित 17 लाख प्रजातियों में से सिर्फ एक है। पारिस्थितिक तंत्र एक दूसरे के साथ जुड़े हुए है एवं जीवन एक जाल की तरह है जिसे हमें और अच्छे ढंग से संरक्षित करना होगा।

मई 2016

सूचनाः इस पूस्तिका में प्रस्तुत किए गए विषय के बारे में टिप्पणी करने या ग्लोबल वार्मिंग के बारे में चर्चा करने के लिए पाठक मुझ से सम्पर्क कर सकते है। कोई भी संगठन या संस्था इस पुस्तिका को किसी भी भाषा में अपने नाम से प्रकाशित कर सकता है। लेखन की स्वीकृति अगर मुझे दिया जाता है तो अच्छा होगा परंतु यह आवश्यक नहीं है। कृपया इसके लेखन में परिवर्तन न करें। यह पुस्तिका अंग्रेजी के मूल लेखन का अनुवाद है एवं इसके एक पहले के संस्करण का कन्नड़ भाषा में अनुवाद हो चुका है। यह संस्करणों के प्रतियां भी इमेल से उपलब्ध कराएं जा सकते है।

संदर्भ सूची

हिंदी भाषा में जलवायु परिवर्तन के विषय में विस्तृत लेख या संदर्भ मिलना मुश्किल है इसलिए यहां अंग्रेजी में उपलब्ध कुछ प्रमुख संदर्भों का उल्लेख किया गया है।

- India Climate Justice, Mausam nos. 1-6, http://www.thecornerhouse.org.uk/resources/results
- Soumya Dutta, et al, Climate Change and India, RLS/ Daanish Books, Delhi, 2013.
- IPCC, Climate Change 2013: The Physical Science Basis, Summary for Policy Makers, https://www.ipcc.ch/report/ar5/.
- Delhi Platform, 'Impacts of Global Warming on Agriculture in India', 2009 (ys[kd ds ikl miyC/k).
- P.K. Aggarwal, 'Global Climate Change and Indian Agriculture: Impacts, Adaptation and Mitigation', Indian Journal of Agricultural Sciences, vol. 78, no. 10, November 2008, pp. 911-919.
- Nagraj Adve, 'Moving Home: Global Warming and the Shifts in Species' Ranges in India', Economic and Political Weekly, vol. 49, no. 39, 27 September 2014.
- People's Science Institute, Documenting Climate Change in Uttarakhand, Dehradun, 2010 (लेखक के पास उपलब्ध)
- MoEF/ Government of India, India's Intended Nationally Determined Contribution, October 2015, http://www4.unfccc.int/submissions/INDC/Published%20Documents/India/1/INDIA%20INDC%20TO%20UNFCCC.p

df (जलवायु परिवर्तन के बारे में भारत सरकार के आधिकारिक दृष्टिकोण इसमें व्यक्त है).

- Centre for Science and Environment, Down to Earth, http://www.downtoearth.org.in/ (भारत में जलवायु परिवर्तन की वर्तमान स्थिति संबंधी खबर एवं विश्लेषण इसमें मिलेंगें).
- Indian Network on Ethics and Climate Change/ INECC, http://inecc.net/ (भारत में जलवायु परिवर्तन से संबंधित राजनीतिक विश्लेषण इसमें मिलेंगें).
- John Bellamy Foster, The Ecological Revolution, Cornerstone Publications, Kharagpur, 2009.
- Naomi Klein, This Changes Everything: Capitalism vs the Climate, Penguin Books, 2014.
- अन्य देशों में जलवायु परिवर्तन से जुड़ी समस्याओं एवं संघर्षों के बारे में जानकारी के लिए देखें - https://350.org/
- विकास एवं जलवायु परिवर्तन से जुड़ी नियमित खबरों एवं राजनीतिक विश्लेषण के लिए देखें - Guardian newspaper, at https://www.theguardian.com/environment/climate-change

शब्दावली

1. **सौर विकीरण :** सुर्य से जो ऊर्जा पृथ्वी पर आ रहा है उसे सौर विकीरण कहा जाता है। यह विभिन्न रूपों में आता है - प्रकाश, (यह उष्मा या गरमी है जिसे कार्बन डायऑक्साइड जैसे गैस द्वारा वातावरण में कैद कर लिया जाता है।)

2. **ग्रीन हाउस प्रभाव :** यह वह प्रभाव है जिसमें कार्बन डायऑक्साइड जैसे गैसों द्वारा वातावरण में उष्मा को कैद कर लिया जाता है, ठीक वैसे ही जैसे कि ठण्ड मौसम वाले देशों में उन कांच के बने मकानों में होता है जिन्हें पौधों को गरम वातावरण में उगाने के लिए बनाया जाता है और जिन्हें वहां ग्रीनहाउस कहा जाता है।

3. **पी.पी.एम :** अंग्रज़ी में पार्ट्स पर मिलियन का यह संक्षिप्त रूप है जिसका अर्थ है किसी आयतन का वह एक सूक्ष्म भाग जो उसे १० लाख हिस्सों में बांटने के बाद मिलता है। उदाहरण स्वरूप वर्तमान में वातावरण की पूरी हवा में प्रति १० लाख भागों में से केवल ४०० भाग कार्बन डायऑक्साइड है परंतु यह ही अधिक मात्रा में गरमी को कैद कर रहा है। जबकि ऑक्सिजेन का प्रति १० लाख भाग में २ लाख दस हजार भाग होने पर भी वह गरमी बिल्कुल नहीं कैद करता है।

4. **पारिस्थितिक तंत्र :** यह एक ऐसा क्षेत्र है, जो समतल भूमि, वन, पहाड़, जलाशय, नदी, सागर या महासागर हो सकता है, जहां मानव, पौधे, पशु, पक्षी एवं अन्य जीवित प्राणियां अपने जीवन जीने के लिए एक दूसरे पर निर्भर है एवं एक दूसरे एवं हवा, मिट्टी व पानी के साथ तालमेल रखकर जीते है।

5. **अल्पाईन प्रजाति :** यह वह पशु, पक्षी, पौधे एवं अन्य जीवित प्राणियां है जो पर्वतों की ठण्डी ऊंचाईयों पर पाए जाते है जहां पेड़ नहीं होते। भारत में यह

केवल उत्तर एवं उत्तरपूर्व के हिमालय एवं अन्य पर्वतमालाओं में पाए जाते है। यूरोप के आल्प्स पर्वतमाला से इनका नाम आया है।

6. **ग्लेशियर :** यह बरफ की एक नदी है जो ऊंची पर्वतों के ढलानों पर गिर रहे बरफ के समय के साथ ठोस हो जाने से बनते है एवं यह धीरे धीरे नीचे की ओर खिसकने लगते है। भारत में हिमालय पर्वत में ऐसे हजारे ग्लेशियर है। यह विश्व के अन्य ऊंची पर्वतमालाओं एवं उत्तरी एवं दक्षिण ध्रुव में भी पाए जाते है।

7. **हाइड्रोलॉजिकल चक्र :** यह वातावरण में पानी का चक्र है जो महासागरों से वाष्पिकृत होकर बादल बनकर भूमि पर वर्षा और बरफ के रूप में आकर बरसता है और फिर नदियों के माध्यम से वापस महासागरों में पंहुच जाता है।

8. **मिटिगेशन :** वर्तमान में हो रहे एवं भविष्य में होनेवाले सम्भावित ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को कम करने के लिए किए गए कार्यों को मिटिगेशन कहा जाता है। यह कार्य जीवाश्मिक इंधन के खपत को कम करके, नवीकरणीय ऊर्जा के उपयोग को बढ़ाकर, ऊर्जा के उपयोग एवं औद्योगिक उत्पादन में बेहतर प्रौद्योगिकी का उपयोग कर एवं सार्वजनिक यातायात को बढ़ावा देने जैसे नीतिगत निर्णय लेकर सम्पन्न हो सकता है।

9. **एडेप्टेशन :** यह जलवायु परिवर्तन का मुकाबला करने के लिए उठाए गए कदम है जैसे बाढ़ से बचाव, प्रभावित क्षेत्रों को खाली कराना, जल संरक्षण, कृषि पद्धतियों में परिवर्तन, पारम्परिक बीजों का उपयोग आदि।

10. **फोटोवोल्टैक :** ऐसी तकनीकी प्रक्रिया जिससे सौर ऊर्जा को सौर पैनेलों के माध्यम से बिजली में परिवर्तित किया जाता है।

11. **मास रैपिड ट्रांज़िट :** त्वरित गति से चलनेवाली सार्वजनिक यातायात प्रणाली जैसे मेट्रो, त्वरित रेल एवं त्वरित बस सेवाएं।

12. **कार्बन क्रेडिट :** कोई व्यापारिक इकाई, सामुदायिक संस्था, स्थानीय, प्रांतीय या राष्ट्रीय सरकार अगर उत्सर्जन को कम करने का कोई काम करता है तो उसे किसी नियामक संस्था द्वारा जांच के बाद कार्बन क्रेडिट यानि कार्बन उत्सर्जन में कमी लाने का प्रमाणपत्र दिया जाता है। जिन व्यापारिक निगमों या विकसित देशों द्वारा नियमानुसार अपने उत्सर्जन में कमी नहीं किया जा रहा है वे इन कार्बन क्रेडिटों को खरीदकर इस मायने में अपनी जिम्मेदारियां पूरी कर सकते है।

13. **क्लीन डेवलपमेंट मेकनिज़्म :** यह जलवायु परिवर्तन को रोकने हेतु हुई क्योटो संधि के तहत एक ऐसी योजना है जिसके अनुसार औद्योगिकृत देश विकसित देशों में ऐसी परियोजनाओं या प्रौद्योगिकी को वित्तीय मदद देंगें जिससे कि वहां कार्बन उत्सर्जन में कमी आएगी एवं इसके लिए उन्हें कार्बन क्रेडिट मिलेगा।

14. **रेड्ड प्लस :** यह एक ऐसी अंतर्राष्ट्रीय योजना है जिसके तहत वनों के नाश के कारण हो रहे ग्रीनहाउस गैस के उत्सर्जन को कम करने एवं वनों का संरक्षण व संवर्धन कर उनमें वातावरण से कार्बन को शोषित कर उसका भंडारण करने के लिए विकासशील देशों को विकसित देशों द्वारा राशि उपलब्ध कराई जाएगी। वनों में रह रहे समुदायों व गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा इस योजना की आलोचना की गई है यह कहकर कि इसके कारण वनां में रह रहे लोगों का विस्थापन होगा एवं वनों पर व्यापारिक निगमों का कब्जा हो जाएगा।